साप्ताहिक ओ३म् कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य सन्देश

ऋषि बोधोत्सव
एवं
स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती
संयुक्ताङ्क

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

घर बैठे चटपटी चाट का आनन्द लीजिये
एम डी एच
चाट मसाला
चाट, सलाद, कटे हुए फल, दही, वेफर्स, चिप्स आदि अनेक प्रकार के नमकीन व्यंजनों का भरपूर स्वाद लीजिये ।
इन पर एम.डी.एच. चाट मसाला छिड़किये और फिर देखिये अपने मेहमानों को और घर वालों को..... कैसे मिनटों में प्लेटें साफ कर जायेंगे
महाशियां दी हट्टी प्राइवेट लिमिटिड
के अन्य उत्कृष्ट उत्पादन :
एम.डी.एच. किचन किंग, गरम मसाला, देगी मिर्च, चना मसाला आदि
एम डी एच
चाट मसाला
NET. WT. 100 g. 3.5 OZ

साप्ताहिक ओ३म् कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
आर्यसन्देश

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक मुखपत्र

ऋषि बोधोत्सव

एवं

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

(संयुक्तांक)

मूल्य ५.००	रविवार ८ मार्च १९९२	वर्ष १५ : अंक १६
वार्षिक : २५-००	फाल्गुन शुक्ला ४ सम्वत् २०४८	दयानन्दाब्द : १६८

युग पुरुष महर्षि दयानन्द का सिंहनाद

प्रिय पाठकगण ! वर्तमान समय में जब स्वामी दयानन्द ने देखा कि समस्त मनुष्य जीवन के उद्देश्य से अनभिज्ञ होकर कष्ट उठा रहे हैं तथा संसार के धार्मिक उपदेशक स्वार्थवश मनुष्यों को बहका कर आपस में लड़ा रहे हैं और सत्य से सब अनभिज्ञ होकर केवल पक्षपात एवं हठधर्मी से एक दूसरे को बुरा कहने की बान पकड़ गए हैं, प्रत्येक मनुष्य अपने घमण्ड में अपने असत्य विचारों को सत्य समझ रहा है तथा दूसरे के सत्य विचारों को भी झूठा बनाने का प्रयत्न कर रहा है। एक ओर लालच देकर मनुष्यों को अपने धर्म से पतित किया जाता है, दूसरी ओर भय और तलवार दिखा कर अविद्या का राज्य जमाया जाता है, तीसरी ओर झूठी शिक्षा द्वारा मनुष्यों के विचारों को भ्रमात्मक करके नास्तिक बनाया जाता है और चौथी ओर कानून की पेचदार तकरीरों द्वारा मुकदमाबाजी तथा फूट का जोर बढ़ाया जाता है—सारांश यह है कि सब ओर संसार के दासत्व की प्रबलता बढ़ रही है, भाई-भाई के नाश करने को प्रस्तुत है, ऐक्य का

(शेष पृष्ठ ७१ पर)

परामर्श	प्रधान सम्पादक	सह-सम्पादक
डा० धर्मपाल	सूर्यदेव	विमलकान्त शर्मा

सम्पादकीय

ऋषि बोधोत्सव एवं स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

—डा० धर्मपाल

भारतवर्ष की इस पवित्र भूमि पर आदि काल से ही अनेक ऋषियों, महर्षियों, समाज सुधारकों ने जन्म लेकर सत्य, धर्म और न्याय की प्रतिष्ठा करने में अपना अमूल्य सहयोग दिया। यह भारत भूमि राम और कृष्ण जैसे युगपुरुषों की कार्य भूमि रही है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने भारतवर्ष को एक छोर से दूसरे छोर तक एक सूत्र में पिरोने का प्रशंसनीय कार्य किया था। उस महापुरुष ने जन-जीवन की मर्यादाओं की स्थापना की। यहां पर एक वेद मन्त्र उद्धृत करना उचित होगा—

सप्त मर्यादा कवयः ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहु रोगात्।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीले पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥ऋग्वेद १०।५।६॥

इस मन्त्र में वेद ने सात मर्यादाओं का उल्लेख किया है। कहा है कि परमात्मा द्वारा निर्मित सात मर्यादाओं का जो उल्लंघन करता है वह पापी होता है। जो मनुष्य (धरुणेषु) विपत्ति समय, कठिन परीक्षा के समय, (पथां विसर्गे) मर्यादा भंग का प्रलोभन प्राप्त होने पर भी (उपमस्य नीले) परमात्मा के आश्रय में स्थिर रहता है, वह सचमुच (आयोः स्कंभः) मानवता का आधार स्तम्भ होता है।

श्री सुरेशचन्द्र वेदालंकार ने अपने एक लेख में मर्यादाओं का विस्तृत विवेचन किया है। भगवान् राम को मर्यादा पुरुषोत्तम इसीलिए कहा गया है क्योंकि उन्होंने अपने जीवन में वैदिक मर्यादाओं का परिपालन किया था। ये मर्यादाएं आज भी मानवता के लिए आदर्श हैं। सत्य बोलना मर्यादा है। प्राप्त भोगों को भोगना मर्यादा है। इस संसार में रहकर पूर्ण आयु का सेवन करना मर्यादा है। पूर्ण आयु के भोग के सम्बन्ध में वेद कहता है—'क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिः मोद मानौ स्वे गृहे।' पुत्रों, पौत्रों और नातियों के साथ अपने घर में आनन्द मनाते हुए, पूर्ण आयु का भोग करो।

भगवान् श्री कृष्ण आप्त पुरुष हैं, योगीराज हैं। उन्होंने भी राष्ट्रीय संगत की महत्ता का प्रतिपादन किया तथा उसे अपने जीवन में चरितार्थ भी किया, क्रियान्वित भी किया। महात्मा बुद्ध, महावीर, गुरु नानक, राजा राममोहनराय, अरविन्द, विवेकानन्द, गांधी आदि समाज सुधारकों तथा नेताओं के नामों की एक लम्बी सूची है जिन्होंने 'स्व' से ऊपर उठकर परमार्थ के कार्य करने की ओर ध्यान दिया। यदि वे 'स्व' में सिमटे रहते तो आज उन्हें कोई भी याद न करता। हम अपने अन्दर झांककर देखें। क्या हम अपनी सात पीढ़ियों पहले के पूर्वजों के नाम जानते हैं? हम उनके अनेक नाम जानते हैं जिन्होंने जाति, धर्म और राष्ट्र के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का नाम भी ऐसे ही महापुरुषों में लिया जाता है। महर्षि एक जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं ? उन्होंने अन्धविश्वासों, कुरीतियों, कुप्रथाओं आदि सभी बुराइयों से बचने का मार्ग हमें बताया। वे वैचारिक क्रान्ति के अग्रदूत थे और उनकी सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक विचारधाराएं उनके अमूल्य ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' के माध्यम से आज भी हमारा मार्ग प्रशस्त कर रही हैं। यह सद्-विचार और मानव-त्याग का पोषक ग्रन्थ है। सत्यार्थ प्रकाश का रचयिता सत्य और शान्ति का अग्रदूत है, उसमें निर्भीकता और साहस कूट-कूटकर भरा है। वह किसी के सामने झुकता नहीं है। वह सन्यासी योद्धा है। वह अपनी बात को अकाट्य तर्कों के आधार पर आगे बढ़ाता है। उसका हथियार, उसका सहारा, उसकी शक्ति, बल केवल एक है और वह है ईश्वर में अटूट विश्वास। ऐसे व्यक्ति कभी-कभी ही धरती को अलंकृत करते हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की विचारधारा को उनके बाद आगे बढ़ाने वालों में अनेक नाम लिए जाते हैं—स्वामी श्रद्धानन्द, पं० गुरुदत्त विद्यार्थी, पं० लेखराम, महात्मा हंसराज आदि-आदि। इसी श्रृंखला में एक चमकता हुआ नाम है—स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती।

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती का जन्म माघ कृष्ण दशमी सं० १९१८ को लुधियाना जिला के जगरावां नामक गांव में पं० रामप्रताप के घर में हुआ था। इनका मूल नाम नेतराम था। जिसे बाद में बदलकर कृपाराम कर दिया गया। कृपाराम के पिता अपने गांव के प्रसिद्ध व्यवसायी थे। पिता की इच्छा थी कि वह पैतृक व्यापार-व्यवसाय के प्रति रुचि रखे तथा सफल व्यवसायी बने। परन्तु कृपाराम के मन में तो कुछ और ही था। वे स्वतन्त्र प्रवृत्ति के विचारक होने के कारण, घर परिवार से विरक्त हो गए और एक दिन उन्होंने अचानक ही गृह त्याग कर सन्यास वेश धारण कर लिया। उनके मन में एक बार स्वामी दयानन्द सरस्वती से शास्त्रार्थ करने की इच्छा हुई पर उन्होंने उनके भाषणों में ऐसे अकाट्य तर्क पाए कि वे शास्त्रार्थ करने का साहस जुटाना तो दूर, उनके आस्थावान शिष्य बन गए। उन्होंने स्वामी दयानन्द के ३७ व्याख्यान सुने थे। अब उन्होंने 'स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती' नाम धारण कर लिया था। पण्डित श्रीराम शर्मा ने 'दर्शनानन्द दर्शन' में उनका जीवन परिचय दिया है।

आगे चलकर स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती स्वयं शास्त्रार्थ महारथी बने। काशी में 'पं० शिवकुमार शास्त्री' के साथ उनका शास्त्रार्थ आर्य समाज के गौरवपूर्ण इतिहास में सदैव स्मरण किया जाएगा। आगरा में उनका शास्त्रार्थ मौलवी अब्दुल फरह और मौलवी अब्दुल हमीद पानीपती से हुआ। उनका एक शास्त्रार्थ ईसाई पादरी ज्वालासिंह से हुआ। स्वामी दयानन्द सरस्वती के एक शिष्य पं० भीमसेन शर्मा सनातनी बन गए थे। स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती के साथ उनका यह ऐतिहासिक शास्त्रार्थ १९-२०-२१ फरवरी १९०१ को आगरा में हुआ। निश्चय ही पं० भीमसेन शर्मा को झुकना पड़ा। ताजपुर बिजनौर के नास्तिक जमींदार को उन्होंने ऐसा ध्वस्त किया कि उस क्षेत्र में आर्य समाज की विजय पताका फहर गई। उनके अनेक शास्त्रार्थ बिजनौर, धामपुर, गोरखपुर, पेशावर, ज्वालापुर आदि स्थानों पर ईसाईयों, मुसलमानों, जैनियों तथा सनातन-धर्मियों के साथ हुए।]

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती ने ऋषि दयानन्द, वैदिक—फिलासफी आदि पत्रों का सम्पादन भी किया। स्वामी जी ने अनेक गुरुकुलों की स्थापना की। [गुरुकुल सिकन्दराबाद, गुरुकुल बदायूं, गुरुकुल ज्वालापुर उनके कीर्ति स्तम्भ हैं। स्वामी जी महाराज के लेख एवं ग्रन्थ 'दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह' के नाम से अनेक प्रकाशकों ने प्रकाशित किए हैं। स्वामी जी के अनेक ऐसे ग्रन्थ भी हैं जो अभी तक प्रकाश में नहीं आए हैं।

(शेष पृष्ठ ८० पर)

पादरी ज्वालाप्रसाद ने कहा था—

स्वामी दर्शनानन्द मरे नहीं जिन्दा है

—स्वामी आनन्दबोध सरस्वती
प्रधान, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

स्वामी दर्शनानन्द जी का जन्म जगरावां (पंजाब) में हुआ था और इनका नाम पहले पं० कृपाराम था। अपने जीवन काल में उन्होंने आर्य समाज की जो सेवायें की हैं वह आर्यसमाज के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों से अंकित की जायेंगी। स्वामी दर्शनानन्द जैसे त्यागी, तपस्वी और योग्य कुछ ही विद्वान् आर्य समाज में हुए हैं।

श्री पं० गणपति शर्मा जिनका जन्म नीमच में हुआ था वे उन्हीं दिनों प्रचार कार्य में लगे हुए थे। पं० गणपति शर्मा अद्वितीय विद्वान् थे। स्वामी दर्शनानन्द और पं० गणपति शर्मा में "वृक्षों में जीव है अथवा नहीं" विषय पर काफी बड़ा शास्त्रार्थ ज्वालापुर महाविद्यालय में हुआ था, जिसमें अनेक विद्वान् शामिल हुए थे।

स्वामी दर्शनानन्द जी ने अनेक ग्रन्थों, दर्शनों एवं उपनिषदों पर भाष्य किया था। और भाष्य पर प्रश्नोत्तर करके गम्भीर विषयों को साधारण जनता तक पहुंचाने का बहुत ही प्रशंसनीय कार्य किया था।

एक विदेशी मौलवी भारत में आया था जिसने समूचे हिन्दू समाज को चैलेंज किया था। उस समय कुछ अदूरदर्शी आर्य समाजियों ने स्वामी दर्शनानन्द को आर्यसमाज से निकाला हुआ था। किन्तु उस मौलवी से शास्त्रार्थ करने के लिए कोई सनातनी अथवा आर्य समाजी विद्वान् मैदान में नहीं आया तो स्वामी दर्शनानन्द ने उससे शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया और उस मौलवी को अपने तीक्ष्ण उत्तरों से निरुत्तर कर दिया।

स्वामी दर्शनानन्द के हाथरस में देहावसान की घटना भी विचित्र है। अपनी मृत्यु का जब उन्हें आभास हुआ तो उन्होंने पूरे नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि दर्शनानन्द संसार से जाने वाला है, यदि किसी को वैदिक धर्म पर कोई शंका हो तो उसका निवारण कर ले। यह एक विचित्र घोषना है जो मृत्यु से पूर्व किसी ने की हो। स्वामी दर्शनानन्द को आर्य सिद्धांतों पर अटूट विश्वास था इसीलिए उन्होंने ऐसी घोषणा की थी। उन्हें अपनी योग्यता और विद्या पर पूरा विश्वास था।

उन्होंने अपने जीवन में गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की स्थापना एक खेत में गाजर खाते समय की थी। वे एक व्यक्ति के खेत में खड़े हुए गाजर खा रहे थे तभी उन्होंने कहा कि मैं यहां ज्वालापुर में एक गुरुकुल की स्थापना करना चाहता हूं। उसने कहा कि स्वामी जी आपके पास कितने पैसे हैं तो स्वामी दर्शनानन्द ने कहा कि केवल बारह आने पैसे हैं। वह महानुभाव स्वामी जी को अपने घर ले गया और जिस भूमि पर आज गुरुकुल महाविद्यालय बना हुआ है वह जमीन गुरुकुल के लिए दान में दे दी।

स्वामी दर्शनानन्द जी को ईश्वर पर अटूट विश्वास था। वे जानते थे कि प्रत्येक व्यक्ति को कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। ईश्वर कृपा के बिना कोई कार्य नहीं होता।

(शेष पृष्ठ ७५ पर)

शास्त्रार्थ महारथी—
स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

—पद्मश्री डा० कपिलदेव द्विवेदी
निदेशक, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर (वाराणसी)

परमात्मा की असीम अनुकम्पा से धर्म और समाज की उन्नति के लिए असाधारण महापुरुषों का आविर्भाव होता है। स्वामी दर्शनानन्द जी उन्हीं महापुरुषों में से हैं, जिन्होंने अपनी चतुर्मुखी क्रान्ति के द्वारा शिक्षा, धर्म और समाज के क्षेत्र में क्रान्ति का बिगुल बजाया। शिक्षा के क्षेत्र में नि:शुल्क शिक्षा वाले गुरुकुलों के प्रथम प्रवर्तक थे। वैदिक धर्म के प्रचार और प्रसार के लिए तीन सौ से अधिक ग्रन्थ और ट्रैक्ट लिखे। सामाजिक क्रान्ति के लिए अपना सर्वस्व त्याग कर सहस्रों युवकों को ईसाई और मुसलमान होने से बचाया। धर्म और संस्कृति की सत्य रूपरेखा प्रस्तुत कर उन्हें ज्ञान का आलोक दिया।

नीतिकारों का कथन है कि उसी मनुष्य का जीवन सफल है, जिसने ज्ञान, पुरुषार्थ और अदम्य उत्साह से संसार में अक्षय यश प्राप्त किया है। अन्यथा पशु-पक्षी भी अपना जीवन-निर्वाह करते हैं।

यज्जीव्यते क्षणमपि प्रथितं मनुष्ये—
विज्ञान—विक्रम—यशोभिरभज्यमानम्।
तन्नाम जीवितमिह प्रवदन्ति तज्ज्ञा:
काकोऽपि जीवति चिराय बलिं च भुङ्क्ते॥

अतएव महाभारतकार का कथन है कि क्षण भर का जीवन भी सफल है, यदि वह प्रकाशपुंज की तरह देदीप्यमान होता है। धुएं के तुल्य मलिन जीवन निन्द्य है।

'मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्।''

स्वामी दर्शनानन्द जी महापुरुष के सभी गुणों से विभूषित थे। ये आर्य-जगत् की त्रिवेणी (दयानन्द श्रद्धानन्द और दर्शनानन्द) के एक रत्न थे। ये परम तपस्वी, वैदिक वाङ्मय के उद्भट विद्वान्, महान् दार्शनिक, परमवाग्मी, शास्त्रार्थ महारथी, अथक लेखक और सरस्वती के वरद पुत्र थे।

स्वामी दर्शनानन्द जी का जन्म माघ कृष्णा १० सम्वत् १९१८ वि० (सन् १८६१ ई०) में लुधियाना जिले के जगरावां ग्राम में हुआ था। इनके पिता पंडित राम प्रताप मौद्गल्य गोत्रीय सारस्वत ब्राह्मण थे। इनकी माता का नाम हीरादेवी था। स्वामी जी का बचपन का नाम नेतराम था, जो बाद में कृपाराम हो गया। इनके पितामह पं० दौलतराम और प्रपितामह पं० परशुराम थे। ११ वर्ष की अल्प आयु में इनका विवाह पार्वती देवी से हुआ।

इनके पिता धनाढ्य और व्यापारी थे। इन्हें परिवार का व्यवसाय पसन्द नहीं आया और ये महर्षि दयानन्द के व्याख्यान सुनने के लिए लालायित रहते थे। इनका स्वयं का कथन है कि—'मैंने स्वामी दयानन्द के ३६ व्याख्यान सुने हैं और ३६ वर्षों तक आर्यसमाज की सेवा की है।'

(शेष ७६ पृष्ठ पर)

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

—महाशय धर्मपाल
प्रधान आर्य केन्द्रीय सभा, दिल्ली

महर्षि दयानन्द सरस्वती का आविर्भाव ऐसे समय हुआ था जब हमारा देश पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। हमारा समाज अनेक अन्ध-विश्वासों, कुरीतियों तथा रूढ़ियों से ग्रस्त था। धार्मिक कर्मकाण्डों में अनेक कुप्रथाएं व्याप्त हो गई थीं। नव जागरण के पुरोधा ऋषिवर ने तत्कालीन समाज को एक नई चेतना एवं ऊर्जा प्रदान की। उन्होंने सोई हुई आर्य जाति को झकझोर दिया तथा उन्होंने धार्मिक मर्यादाओं का पालन करने के लिए बाध्य किया।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के कार्य को उनके अनुयायियों ने आगे बढ़ाया। स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज, पं० गुरुदत्त विद्यार्थी, पं० लेखराम, स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जैसे आर्य समाज और वैदिक धर्म के मूर्धन्य नेताओं ने उनके काम को आगे बढ़ाया। वैदिक धर्म की मान्यताओं का प्रचार प्रसार किया। उस समय का भारत वेद को लगभग भूल चुका था। आर्य समाज ने सत्य सनातन वैदिक धर्म की पुन: स्थापना की।

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती का जन्म माघ कृष्ण दशमी संवत् १९१८ विक्रमी को लुधियाना के जगरावां ग्राम में हुआ था। आर्य समाज के सुप्रसिद्ध विद्वान्, तर्क शिरोमणि एवं प्रगल्भ लेखक तथा शास्त्रार्थ महारथी स्वामी दर्शनानन्द का पूर्वनाम नेतराम और आगे चलकर कृपाराम था। वे अद्वैत सनातन धर्म के प्रभाव में थे। उनके हृदय में एक बार स्वामी दयानन्द सरस्वती से ही शास्त्रार्थ करने की भावना जागी थी, परन्तु उन्होंने महर्षि के भाषणों में नवीन वेदान्त की युक्तियुक्त आलोचना सुनी थी, अत: वे उनके साथ शास्त्रार्थ का साहस न जुटा पाए और स्वामी जी महाराज के अनुयायी बन गए।

पं० कृपाराम ने काशी में रह कर विभिन्न शास्त्रों तथा संस्कृत व्याकरण का गहन अध्ययन किया तथा 'तिमिर नाशक' प्रेस की स्थापना की। वे यहां से विभिन्न शास्त्रों के ग्रंथ प्रकाशित करके नि:शुल्क वितरित किया करते थे। उन्होंने स्वामी मनीषानन्द सरस्वती जैसे सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् से शास्त्रार्थ अध्ययन किया और वे आगे चलकर आर्य समाज के उत्साही, उपदेशक, व्याख्याता और शास्त्रार्थ महारथी बने। उन्होंने सनातन धर्म, ईसाई धर्म, मुस्लिम धर्म, जैन धर्म के अनेक विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ किए। काशी में पं० शिवकुमार शास्त्री के साथ किया गया उनका शास्त्रार्थ आर्य समाज के इतिहास का गौरवपूर्ण अध्याय है। स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती ने 'तिमिर नाशक', 'आर्यावर्त', 'वेद प्रचारक', 'भारत-उद्धार', 'वैदिक धर्म', 'वैदिक मैगजीन', 'गुरुकुल समाचार', 'ऋषि दयानन्द' आदि पत्रों का सम्पादन एवं संचालन किया। गुरुकुल सिकन्दराबाद, गुरुकुल बदायूं, गुरुकुल विरालसी, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर उनकी कीर्ति पताकाएं हैं।

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती एक सुविख्यात साहित्यकार भी थे। 'दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह' का प्रकाशन अनेक आर्य समाज के प्रकाशकों ने किया है। उनका 'उपनिषद प्रकाश' एक गौरवपूर्ण ग्रन्थ है। आर्य समाज के सभी प्रचारकों को उनके साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। उनके कुछ ग्रन्थ पहले उर्दू में प्रकाशित हुए थे। उनकी भाषा-शैली सरल एवं प्रवाहपूर्ण है। उनके निधन पर लाला लाजपतराय ने कहा था—जिस समय स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती का स्मरण आता है, आंखों से अश्रुधारा बहने लगती है। उनमें ऐसे गुण थे, जो बहुत कम मनुष्यों में होते हैं। उनकी वाणी दो-धारी तलवार की भांति ऐसी तीव्रता से, दक्षता से चलती थी कि आक्षेपकर्ताओं के आक्षेप कट-कट गिरते थे। उस महान् दार्शनिक विद्वान् स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती को मेरा शतश: प्रणाम।

तर्क शिरोमणि स्वामी दर्शनानन्द

—श्री रामनाथ सहगल
मन्त्री, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा

तर्क शिरोमणि तर्क तीर थे प्रखर नुकीले।
जिनसे मस्त भुजंग मतों के तत्क्षण कीले।
वैदिक वर सिद्धांत सुधा में स्वयं नहाये।
अगणित पावन किए भक्तजन जो भी आए।
जगरावां के सन्त अमर हों नामी ग्रामी।
दिव्य दर्शनानन्द हमारे प्यारे स्वामी॥

आर्य समाज के संस्थापक आनन्द कन्द महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के पश्चात् जिन विद्वज्जनों एवं उपदेशकों ने वैदिक धर्म एवं संस्कृति का प्रचार प्रसार किया है तथा "कृण्वन्तो विश्वमार्यम" का शंखनाद आजीवन बजाने का दृढ़ संकल्प लिया है, उनमें तर्क शिरोमणि स्वामी दर्शनानन्द जी का सर्वोच्च स्थान है। उन्हें अहर्निश, खाते पीते, सोते जागते सदैव शुद्ध सनातन वैदिक धर्म एवं संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार की ही चिन्ता निरन्तर लगी रहती थी।

उन्हें न केवल तर्क वागीश होने का गौरव प्राप्त था अपितु शास्त्रार्थ करने का भी उन्हें पूर्णतया गौरव प्राप्त था। उन्हें केवल पता लगना चाहिए कि अमुक स्थान पर शास्त्रार्थ हो सकता है। वहां तुरन्त पहुंच जाते तथा आर्य जगत के मूर्धन्य विद्वानों को शास्त्रार्थ के लिए प्रोत्साहित करते तथा कहते कि अन्यान्य मतावलम्बियों एवं धर्मानुयायियों को ललकारो कि आर्य समाज शास्त्रार्थ के लिए उद्यत है। उनका मस्तिष्क क्या था, मानो तर्क एवं प्रमाणों का एक कोष था।

आप पं० दौलतराम के पौत्र एवं रामप्रताप के यशस्वी पुत्र थे। आपका बाल्यावस्था का नाम पं० कृपा राम शर्मा था जो कालान्तर में दर्शनानन्द के नाम से विख्यात हुए। पं० कृपाराम जी का काशी शास्त्रार्थ एक ऐतिहासिक शास्त्रार्थ था। जो चौथ सुदी भाद्रपद सम्वत् १९४६ विक्रमी को काशीस्थ आर्य समाज मन्दिर में काशी के मूर्धन्य विद्वानों के साथ सम्पन्न हुआ। लगभग एक सौ विद्वान् इस स्वर्णावसर पर एकत्रित हुए। आर्य समाज की ओर से अकेले पंडित कृपाराम थे। शास्त्रार्थ का विषय था—'देवतावाद"।

पौराणिक पण्डित मण्डली की ओर से यह कहा गया कि देवता योनि मनुष्य योनि से भिन्न है। देवताओं का निवास भी इस पृथ्वी पर नहीं है। वे यज्ञ हवन करने वालों के घर अनाहूत ही एक दिवस पूर्व आ जाते हैं। अतः यजमान के लिए व्रत रखना अत्यावश्यक है। एक श्लोक पढ़कर पंडितों ने कहा कि यह वेद मन्त्र है। आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वान् पं० कृपाराम (स्वामी दर्शनानन्द) ने चारों वेदों को सामने रख-कर कहा कि दिखाओ वेदों में यह मन्त्र किस वेद में आता है। पौराणिक दल अपनी बात से बदल गया और

(शेष पृष्ठ ७९ पर)

त्यागमूर्ति दर्शनानन्द—
तुम्हें शत शत प्रणाम

—डा० महेश विद्यालंकार

ऋषि दयानन्द के व्यक्तित्व और कृतित्व में ऐसी दैवीय चमत्कारिक आकर्षण शक्ति थी कि जो भी उनके संसर्ग में आया, वही दिव्य और धन्य हो गया। उन्होंने अपनी प्रेरक दृष्टि के स्पर्श से न जाने कितने हृदयों में सुप्त, प्रच्छन्न दैवीय भावों को जगाकर उन्हें महापुरुष बना दिया। यही था उस सत्यव्रती पुण्यात्मा की वाणी का चुम्बकीय आकर्षण जो सिर पर चढ़कर बोलता था। आर्य समाज ने अपने अतीतकाल में अनेक देश, धर्म, जाति और संस्कृति पर सर्वस्व न्योछावर करने वाले पागल, दीवाने, मस्ताने व जनून वाले लोग पैदा किए। उन्हीं दीवानों में ऋषि के मिशन के लिए सब कुछ लुटाने वाले स्वनाम धन्य स्वामी दर्शनानन्द जी थे।

स्वामी दर्शनानन्द जी का पूर्व नाम कृपाराम था। बाल्यकाल में ही विवाह हो गया था। उनके पिता प्रसिद्ध धनाढ्य व्यवसायी थे। पिता जी अपने पुत्र को व्यापारी बनाना चाहते थे। कृपाराम मस्त प्रकृति के होने के कारण व्यापार में रुचि नहीं लेते थे। ऋषि के व्याख्यान सुनने से सांसारिक रुचि घटने लगी थी। पूर्वजन्म के भक्ति-भावना के सुप्त भाव ऋषि दयानन्द के प्रवचनों से जाग्रत हो उठे। कृपाराम ने विरक्त होकर संन्यास की दीक्षा ली। ऋषि की नवीन वेदान्त पर तर्क और युक्तियों से बहुत प्रभावित हुए। निरन्तर स्वामी दयानन्द के प्रवचनों की संगति करने लगे। चाचा जी ने स्वामी दर्शनानन्द को जोर जबर्दस्ती करके घर चलने के लिए तैयार किया। स्वामी जी ने घर चलने के लिए निम्न तीन शर्तें रखीं। १—गेरुए वस्त्र नहीं उतारूंगा। २—घर में नहीं, बैठक में रहूंगा। ३—स्वामी दयानन्द के सभी ग्रन्थ उपलब्ध कराने होंगे।

स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज का महत्वपूर्ण व स्थायी योगदान रहा है—गुरुकुलों की स्थापना, अनेक ट्रैक्टों का लेखन, दर्शनों और उपनिषदों का भाष्य, अनेक शास्त्रार्थ, निर्धन छात्रों को आर्थिक व पुस्तक सम्बन्धी सहायता, गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति को प्रचारित व प्रसारित करना, बुद्धि और तर्क का सभी विषयों में समावेश करना। वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में स्वामी दर्शनानन्द का अग्रिम पंक्ति में स्थान है। वे धुन के पक्के थे। जिस काम में लगते थे, उसमें रात दिन एक कर देते थे। उन्हें दर्शनों के अध्ययन, मनन और युक्तियों में इतना आनन्द आता था कि उन्होंने अपना नाम भी दर्शनानन्द रखा था। उन्होंने लगभग दो सौ पचास ट्रैक्ट, वेदान्त दर्शन, न्याय दर्शन, उपनिषदों के भाष्य लिखे। उनके कुछ ट्रैक्ट बड़े ही प्रेरक व पठनीय हैं। उनमें ऐसी उक्तियां तर्क व प्रमाण दिए हैं कि विपक्षी उनकी प्रतिभा और योग्यता के समक्ष नत

(शेष पृष्ठ ७६ पर)

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

परिचयोल्लास

—डा० सच्चिदानन्द शास्त्री

ओ३म् य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यच्छाया अमृतम् यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम् ।।
(यजुर्वेद अ० २५ । म० १३)

परिवर्तित्तनि संसारे मृतः को वा न जायते ।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ।।
(नीति शास्त्र)

जननी जन्म भूमि और विशाल कुल

मनुस्मृति, रामायण, महाभारतादि आर्यावर्तीय प्राचीन वांगमय ने भारत के मानचित्र में नगाधिराज हिमालय के अभिषिक्त धवल कैलाश को मुकुट इरावती आदि से सिंचित शस्यश्यामल पंचनद प्रान्त को दक्षिणांग दृषद्वती द्वारा हरित भरित काम रूप प्रदेश को वामांग और भारत सागर में सिंहल द्वीप विराजिता किलोल करती कमनीया कमलिनी लंका को चरणारविंद कल्पित किया है। मनु, वाल्मीकि और व्यास के चित्रण में आर्ष भूमि पंचनद (पंजाब) अपनी गुणगरिमा के कीर्ति कीर्तन से सुविख्यात चली आ रही है।

यह भूमि पुरातन काल में राष्ट्र के मूल रक्षक तत्वद्वय ब्राह्मबल और क्षात्रबल की प्रसविनी रही है। उसके परम्परागत परमाणु महाभारत काल के पांच हजार वर्ष बीतने तक भी सुरक्षित रहे थे। उसी प्रदेशान्तर्गत शतद्रु (सतलज) सरिता सिञ्चित उसके पूर्वी भाग में लुधियाना जिला फैला हुआ है, इसका जगरावां उपनगर प्रसिद्ध है। हमारे चरितनायक के कई पीढ़ियों के पूर्वज इसी वसति में निवास करते चले आ रहे थे। चरितनायक के प्रपितामह का शुभ नाम पं० परशुराम, पितामह का पं० दौलतराम, पिता का प० रामप्रताप था। इन पूर्वजों के भी जनक पूर्व-पूर्व को क्रमशः मणिराम, रामनाथ, शम्भुनाथ और आद्य पुरुष गोपालनन्द थे। सातवीं पीढ़ी के पण्डित रामप्रताप जी के विशाल कुल में आठवीं पीढ़ी हमारे चरितनायक की संभूति है।

जगरावां में इन अष्ट वंश मौद्गल्य गोत्रीय सारस्वत ब्राह्मणों का "जोशी" वंश शताब्दियों से वैभवशाली घराना मान प्रतिष्ठा में उच्चासन पर गिना जाता था क्योंकि पं० शम्भुनाथ जी ज्योतिर्विद्या में परम निष्णात हुए थे, इनके तनय थे रामनाथ जी। पं० रामनाथ जी के चार पुत्रों में से पं० मणिराम जी उस समय गौरव प्राप्त भाषा फारसी के अद्वितीय विद्वान् हुए। इनके दो पुत्र थे परशुराम जी तथा पण्डित हरदयालु जी। परम्परा के कारण पण्डित परशुराम जी भी फारसी के फाजिल हुए जिनका खिताब "मुंशी साहब" करके प्रसिद्ध रहा। विद्या और वैभव दोनों राज्यलक्ष्मियों से सम्पन्न होने के कारण पटियाला राज्य की मदौड़ रियासत के दीवान पद पर नियुक्त थे। वे एक प्रकार से वहां के प्रमुख यशस्वी शासक ही थे। इनके भी दो आत्मज हुए पण्डित दौलतराम और पं० रामकृष्ण। ये प० दौलतराम जी ही हमारे चरितनायक

के पितामह थे। पं० दौलतराम के दो पुत्र पं० रामप्रताप तथा पं० दयाराम जी हुए। पं० रामप्रताप जी के ही पुत्र रत्न हैं यशस्वी पं० कृपाराम जी शर्मा। पं० दौलतराम जी के सहोदर प० रामकृष्ण जी के सुयोग्य पुत्र हुए पं० जयराम जी शर्मा। पं० कृपाराम जी के यह चाचा पं० जयराम जी शर्मा उनसे कुछ पहिले ही से आर्य सामाजिक विचार धारा में प्रवाहित हो चुके थे।

पं० दौलतराम जी का जन्म मार्ग शीर्ष शुदी ? संवत १८७५ वि० में हुआ था। आप बड़े दानशील और आस्तिक थे। विद्या विकास इनका भी फारसी भाषा के द्वारा ही हुआ था। यह भी अपने पूज्य पिता प० परशुराम जी के बाद उनके स्थानापन्न बन कर "मदौड़" का शासन कार्यभार सम्भालते रहे थे। इनके यहां लेन देन आदि व्यापार भी होता था। अतएव प्रतिष्ठित और जनसाधारण में सम्मानित एवं बड़े प्रमाणिक माने जाते थे। विक्टोरिया के शासन समय में जगरावां के आप खजांची भी रहे। वृद्ध होने पर गृहस्थाश्रम त्याग कर सारा समय भगवदभजन में व्यतीत करने लगे और घर की गद्दी पर सुपुत्र रामप्रताप को बिठा कर स्वयं काशी चले गए। वहां एक निज भवन लेकर स्थायी निवास करने लगे। यहां इन्होंने पढ़ने वाले साधु, सन्यासियों और विद्यार्थियों के लिए एक अन्न क्षेत्र खोल दिया था। आषाढ़ बदी नवमी संवत् १९४५ वि० को उनका काशी में ही देहान्त हो गया। बनारस में आपका नाम "दौलतराम पंजाबी" के नाम से बहुत प्रसिद्ध था। आपके छोटे पुत्र पं० दयाराम जी युवावस्था में ही इस संसार से चल बसे थे, इनके कोई सन्तति न थी।

सरस्वती उपासक पं० रामप्रताप जी

पं० रामप्रताप जी शर्मा ज्येष्ठ बदी सप्तमी सं० १८९६ वि० में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने अपने पूज्य पिता के कार्यों को योग्यता पूर्वक सम्भाला और विकसित किया। ये अपने पिता के ही सदृश फारसी के अच्छे विद्वान थे। घर पर अपने पूज्य पिता की तरह नित्य कर्मों में विष्णुसहस्त्रनाम का पाठ मात्र कर लेते थे। पं० रामप्रताप जी एक बार एक विद्यालय में अध्यापक नियुक्त हुए।

उधर राज्य के युवक राजा के प्रबन्ध के कारण पं० दौलतराम जी का उससे वैमनस्य हो गया था। अत: वे मदौड़ से जगरावां चले आये थे और जगरावां के राज्य के कोषाध्यक्ष पद पर काम करने लगे थे। कुछ काल यह काम करके वृद्ध हो जाने के कारण उन्होंने इस स्थान पर अपने पुत्र रामप्रताप को लगवा दिया था। कोषाध्यक्ष पं० रामप्रताप ने पहले दिन एक नम्बरदार से आमरिवाज के तौर पर एक रुपया स्वीकार कर लिया था। सायंकाल को पता लगा कि कोष में ५ रुपए न्यून हो गये हैं इनकी समझ में आया कि यह अनुचित रीति से एक रुपया लेने का ही फल है। उसी दिन से अनुचित पैसा लेना त्याग दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि इनका निज धन-धान्य उत्तरोत्तर खूब बढ़ने लगा। यहाँ तक कि राजकोष की अलमारी में ये अपने रुपये पृथक् रखने लगे जिससे किसी समय पर अपने किसी मित्र की सहायता भी कर सकें। एक दिन एक प्रतिष्ठित मुसलमान सज्जन ने अपने एक कबूतर को अत्याचारियों के पंजे से बचाने के लिए आधी रात पर इनसे ५०० रुपये मांगे। इन्होंने तुरन्त आकर राजकोष में रक्खे हुए स्वकीय धन से ५०० रुपए निकाल कर उक्त व्यक्ति को दे दिए। इस बात की सूचना किसी राजभृत्य ने मुख्य शासक को दे दी। वे तुरन्त आए, जांच पड़ताल की, तथ्य जान कर कहा कि "कोषाध्यक्ष जी, आगे से आप अपना रुपया यहां न रक्खा करें।" परन्तु कोषाध्यक्ष जी ने कहा—"मुझ से ऐसा न हो सकेगा। आप मेरा पद त्याग स्वीकार करें।" अब राम प्रताप स्वाधीन हो गये, धर्म पूर्वक साहूकारा तथा क्रय विक्रय आदि उनका पुराना धन्धा वेग से चल पड़ा। भाग्य चेता कि इसमें दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि होती गई, अन्त में वह अपने नगर के सर्वोपरि धनाढ्य हो गये।

सौभाग्य से एक पण्डित जी शेखूपुरा नामक ग्राम से जगरावाँ में पधारे। रामप्रताप उनसे मिलने गये उन्होंने पूछा कि "आप कौन वर्ण हैं ? इन्होंने कहा "ब्राह्मण" फिर प्रश्न हुआ कि "क्या आपने संस्कृत में साहित्य शिक्षा प्राप्त की है ?" उत्तर नहीं में मिला। तब पण्डित जी ने कहा—"आप ब्राह्मण नहीं हैं, ब्राह्मण पद का अधिकारी वही है जो वेद, वेदांगों को जानता और उनका अध्यापन तथा यजन-याजन करता हो।" यह सुनते ही रामप्रताप ने कहा कि "मुझे संस्कृत पढ़ाने को कोई कटिबद्ध हो तो मैं पढ़ने के लिए सन्नद्ध हूं।" उत्तर मिला कि—"मैं इस कार्य के लिए सर्वदा बद्ध-परिकर हूं।" अब दोनों की स्वीकारोक्ति से पढ़ना-पढ़ाना आरम्भ हो गया और कुछ समय के पश्चात् वह दिन आ गया कि सुचरित्र धनाढ्य, फारसी तथा गुरुमुखी के विद्वान् रामप्रताप अब संस्कृत के भी पूर्ण पण्डित बन गए। कुछ दिन पश्चात् प्रसिद्ध पीयूष पाणि राज चिकित्सक वैद्य पं० दिलाराम सूरि से पं० रामप्रताप जी का वार्तालाप हुआ। चिकित्सक चूड़ामणि ने प्रसन्न होकर इन्हें आयुर्वेद पढ़ा दिया एवं एक यूनानी चिकित्सा के भिषक् ने इन्हें यूनानी चिकित्सा में भी दक्ष कर दिया। अब पं० रामप्रताप जी अपने बढ़े हुए धन धान्य और ज्ञान-विज्ञान का पात्रों को दान देने लगे। इनके कनिष्ठ भ्राता दयाराम जी भी दयालु और उदार स्वभाव के थे।

पं० रामप्रताप जी अपने सुपुत्र कृपाराम शर्मा के सन्निकर्ष से कितने बदल गए और उनका मानस सरोवर किस प्रकार छलकने लगा यह हम पं० कृपाराम शर्मा के दयानन्द उपदेश श्रवण के पश्चात् के और उनकी काशी की प्रवृत्तियों के प्रकरण में लिखेंगे।

कृपाराम का जन्म

पं० रामप्रताप जी पर ईश्वर की कृपा दृष्टि तो थी ही। घर में प्रथम संतति एक बालिका क्रीडांगण को अपनी किलोलों से प्रफुल्लित कर रही थी जिसका नाम भी सुमनोहर था। इस "कृष्णा" दुहिता के बाद अब पण्डित रामप्रताप जी को पुत्र रत्न भी प्राप्त हुआ अर्थात् इनकी धर्मपत्नी श्रीमती हीरा देवी की स्वर्ण कुक्षि से माघ कृष्णा दशमी सं० १९१८ वि० के दिन शुभ मुहूर्त में हमारे चरितनायक का जन्म हुआ। वैभवशाली धर्मिष्ठ घराने में हर्ष के बाजे बजने लगे। धूमधाम से नामकरण संस्कार सम्पन्न किया गया। पुरानी प्रथा के अनुसार नाम "नेतराम" रक्खा गया जिसने वस्तुतः सबके नेत्रों को आराम दिया। फलित ज्योतिषियों ने भी बड़ी बातें बघारीं। बालक का लालन पालन बड़ी तत्परता से किया जाता रहा। मूल नाम को बदल कर घर के पिता, पितामह, प्रपितामह सबकी सम्मति से "कृपाराम" रखा गया। संस्कारी माता-पिता का बालक दिन-दूनी रात चौगुनी गति से विकसित होता गया। होनहार वृक्ष के पत्ते छुटपन से ही स्निग्धता और रस से चमकते होते हैं। यह लाड़ला बेटा जब एक वर्ष की आयु का हुआ तब इसके चूड़ाकर्म संस्कार का कार्यक्रम बनने लगा।

पंजाब प्रान्त में विशेषकर मुण्डन संस्कार को बड़े वैभवशाली ढंग पर मनाया जाता है। तदनुसार विशेष उल्लास के साथ इस उत्सव की तैयारी हुई और आषाढ़ कृष्णा १४ संवत १९१९ वि० के दिन यह मंगल समारोह सानन्द सम्पूर्ण हुआ। क्रीडारत कृपाराम अब अपनी क्रीड़ाओं से घर के आप्तजनों को खूब प्रमुदित करता रहा।

कृपाराम के जन्म के पश्चात इनके एक भगिनी और तीन अनुजों का भी जन्म हुआ। परस्पर यह सब कई-कई वर्षों के छोटे बड़े थे। ज्येष्ठ भगिनी कृष्णा विवाहिता होने के पश्चात् अल्पायु में ही संसार छोड़ कर चली गई थी। इनके सहोदर पण्डित कर्ताराम जी शर्मा (स्वा० ब्रह्मानन्द जी सरस्वती) पण्डित रामजीदास जी शर्मा, श्री मुनीश्वर जी शर्मा (श्री पं० मणिराम जी शर्मा) हुए थे।

शैशव शिक्षा

"लालयेत् पंचवर्षाणि" का अर्थात् गिल्ली-डंडा खेलने तक का इनका शैशव वैभवशाली घरों के बच्चों की तरह व्यतीत हुआ। जब शब्दोच्चारण की शक्ति कुछ खिलने लगी तब संस्कृत, फारसी के विद्वान और विद्या के पारखी इनके पूज्य जनकवर्य पं० रामप्रताप जी ने दो तीन वर्षों में इन्हें वर्णों के उच्चारण की शिक्षा देकर सामान्य भाषा पढ़ने-लिखने योग्य और व्युत्पन्न बना कर आगे के अध्ययन में लगा दिया। मेधा और स्मृति दोनों पैतृक गुण इन्हें प्रचुर मात्रा में मिले थे। इस पर लक्ष्मीवान सारस्वत पिता का सरस्वती उपासक होना मानो सोने में सुगन्ध का काम कर रहा था। फलतः इनका संस्कृत और फारसी अध्ययन कभी साथ-साथ और कभी आगे पीछे बारी-बारी से जारी हो गया। प्रतिभाशाली विद्यार्थी पुस्तक में बहुत नहीं चिपटा रहता। उस पर भी पिताजी ने इन्हें पारितोषिक के एक चुम्बक का आकर्षण लगा दिया अर्थात् "अमर कोष" के प्रति सौ (१००) श्लोकों पर एक-एक रुपया पुरस्कार देने को कह दिया। फिर क्या था कृपाराम के विद्या व्यसन में और भी वेग आ गया क्योंकि यह रकम उनके अन्य शौकों के काम आएगी। इन्हें क्या क्या विशेष शौक लगे हुए थे यह हम आगे चल कर बताएगे।

उन्नीसवीं सदी में पंजाब और उत्तर प्रदेश में शिक्षित हिन्दू घरानों के लड़के भी फारसी की प्रसिद्ध किताबों में से दो चार लगभग सभी पढ़ते थे। वैसे कृपाराम को भी अपने ही कस्बों के सरकारी मक्तबे के मुदर्रिस (अध्यापक) फारसी के विद्वान् "मियां बोटेशाह" की शागिर्दी में दे दिया गया। कृपाराम इनसे तो फारसी की गुलिस्तां "बोस्तां" सिकन्दर नामा और बहार दानिश पुस्तकें पढ़ते रहे। इधर विद्वान् पिता ने संस्कृत व्याकरण का प्रसिद्ध ग्रन्थ "सिद्धान्त कौमुदी" इन्हें पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। कृपाराम की साक्षरता दिन-दुनी रात चौगुनी बढ़ती गई, यों भाग्यशाली इस बटुक का किशोरकाल खूब विद्याव्यस्त रहने में बीता।

बाल विवाह का विघ्न व्यवधान

उन्नीसवीं सदी पुराणधर्मी समाज की अन्ध परम्पराओं के अन्धानुकरण के लिए प्रसिद्ध ही रही है। इन परम्पराओं के बन्धन से अच्छे सुविकसित घराने भी मुक्त न थे। गोद में खेलने वाले बालक-बालिकाएं विवाह बन्धन में बांध दिए जाते थे। गुजरात प्रान्त में गर्भस्थ बालकों तक के विवाहों की विधियां सम्पन्न होती थीं। यों समग्र भारत में छुटपन का विवाह कुलीनता और सम्मान का द्योतक माना जाता था। भला फिर प० रामप्रताप जी का कुलीन घराना इस आपत्ति से बचने का अपवाद कैसे बन सकता था? वैभवशाली विद्यासम्पन्न विशाल कुल का बालक कृपाराम तो ११ वर्ष का हो गया था। उस पर भी वह एक अनोखा लाड़ला और विशेष तेजस्वी बालक था और अभी उसके पुराण पुरुष पितामह प० दौलतराम जी भी पौत्र की क्रीड़ाओं का और उसके विवाह महोत्सव का आनन्द भोग के मनोरथों का सेवन कर रहे थे। सम्बन्ध के प्रार्थी वर की तलाश में अभियान पर रहते ही हैं। परिणामतः वीरोवाल (जि० अमृतसर) निवासी कुलीन ब्राह्मण श्री पं० सुन्दर दास जी सूरि की सुपुत्री पार्वती के साथ कृपाराम का विवाह सम्बन्ध निश्चित किया गया और वैशाख कृष्णा पंचमी १९२६ बि० के दिन विवाह संस्कार सम्पन्न कर दिया गया।

नई समझ के ११ वर्षीय कृपाराम ने पहले से ही इस नाटक से बहुत नाक भौंह सिकोड़ीं और इस बन्धन से बचने के अनेक युक्ति जाल फैलाए जिनमें वे सफल न हो सके। इन्हें इस जाल में फांस ही लिया गया। इस चार छः दिन के महोत्सव का आनन्द घर के आप्तजनों ने लूट लिया पर कृपाराम तो इस महोत्सव के बाद फिर ज्यों के त्यों अपने पठन-पाठन, व्यायाम, घुड़सवारी, अखाड़े की मल्लविद्या आदि क्रीड़ाओं में यथापूर्व लग गए।

निराला अल्हड़ खिलाड़ी

वैभवशाली इनके घर में घोड़ा गाड़ी आदि अनेक साधन रहते ही थे। आपको घुड़सवारी का शौक इसी अवस्था से लग गया था। घुड़सवारी एक अच्छी मैदानी क्रीड़ा और कठिन व्यायाम है। इस अल्पवय में ही कृपाराम इसमें अभ्यस्त हो गए। घुड़सवारी का शौक तो उन्हें छुटपन से ही था। अपने घोड़ों पर प्यार भी इनका अनूठा और लोकोत्तर था। अपने घोड़ों की खुराक पर आप खूब ध्यान देते थे। आप कभी-कभी घर के बड़ों से अनेक बातों पर अड़ जाते थे।

उन्होंने हम विद्यार्थियों को यह कथा स्वयं सुनाई थी कि मैं "पण्डित जी" से इस बात पर कई बार बड़ा खुश हुआ था कि मेरा कहना मानकर कई बार उन्होंने परात के अन्दर दूध में भीगी हुई जलेबियां मेरे प्यारे घोड़े को खिलाई और अपने हाथ से मैं जलेबियां एक घोड़े को तो प्रायः खिलाता ही था। "पंडित जी" शब्द अपने पूज्य पितृचरण को वे पहले से ही बोलने के अभ्यस्त थे।

गुरुकुल बदायूं में कभी सन्ध्याकालीन विश्रान्ति के बाद जब लहर आ जाती तो खुले मैदान में खाट डलवा कर लेटे बैठे बड़े विद्यार्थियों को अपनी अनेक बाल चेष्टाएं मन्द मुस्कान के साथ सुनाया करते थे और कभी-कभी यौवन काल के भी कौतुक सुनाते थे। यह सन्ध्याकालीन प्रसंग ही इनका एक मनोरंजन का अवसर होता था। उपदेशक श्रेणी के हम छात्रों में से दो चार प्रायः इनके प्रचार के दौरों में इनकी सेवा में तत्पर रहा करते थे, उन प्रसंगों पर एवं स्वसंस्थापित विद्यालय में भी यथा प्रसंग ऐसी आत्म विनोद की घटनाएं सुनाया करते थे।

श्रीयुत पं० नरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ ने स्वलिखित संस्मरणों में नीचे लिखी दो घटनायें लिखी हैं 'एक बार मैं इनकी जन्म-भूमि जगरावां देखने गया था। वहां बाल्यावस्था की एक घटना सुनकर तो मैं दंग रह गया। इनके एक सम्बन्धी ने सुनाया कि जब वे ७-८ वर्ष के बालक थे तब (मकानों की शोभा बढ़ाने के लिए जो कन्नस निकाली जाती है) कन्नस पर दीवार को पकड़कर ये घंटों टहलते रहते थे। वे नीचे न गिर पड़े और यदि गिर पड़ें तो चोट न लग जाय इसलिए कई नौकर सावधान होकर नीचे उनके साथ ही घूमते रहते थे। चार नौकर तो सिरे पर कम्बल फलाकर साथ-साथ चलते थे। मैंने उस मकान की कन्नस को आश्चर्य भरी दृष्टि से देखा है।"

विषधर का सामना

"एक बार स्वामी दर्शनानन्द जी ने अपनी बाल्यावस्था की एक कहानी सुनाई थी। वह यह कि एक दिन वे जब अपने मकान (मकान क्या एक छोटा-सा किला) की दूसरी मंजिल की कोठरी में किसी वस्तु को लेने गए तो वहां एक विषैला सर्प जो पन्द्रह हाथ लम्बा था, बैठा हुआ था, वह इन पर लपका। कृपाराम एकदम वहां रखी मेज के ऊपर कूद गए और उस मेज पर जितना भी सामान था उसको एकत्रित करके दोनों हाथों के बल पर ऊपर उठाये रक्खा। सांप नीचे से ही फूं, फां करता रहा। मौका देखकर कृपाराम जी ने वह सारा सामान जो कि लगभग २५ सेर का था, जब हाथ थक गए तो उस सांप के सिर पर डाल दिया और मेज से कूदकर नीचे मैदान में दौड़ आए। वे कहते थे कि पच्चीस सेर बोझ एक घंटे उनके हाथ पर रहा और न जाने इतनी देर तक वे उस बोझ को कैसे संभाल सके। सांप सिर को इधर-उधर हिलाता रहा और कृपाराम इस ताक में रहे कि सब बोझ एक साथ सांप के सिर पर आ पड़े तो भाग जाने के लिए मौका मिलेगा।"

उन्होंने इसी प्रकार की कई कहानियां सुनाई जिनकी स्मृति का आभास मात्र मेरे मस्तिष्क में है, किन्तु मैं उनको लिख नहीं सकता। उन कहानियों से इतना तो मुझे अवश्य याद रह गया है कि कृपाराम जी रुपये पैसे को हाथ का मैल समझ खूब खर्च करने वालों में थे। गरीबों की सहायता करने वाले थे, दाता थे, दयालु थे और हठी थे जिस कार्य की हठ पड़ गई फिर चाहे जो हो, कर ही डालते थे। उनकी इच्छा के विरुद्ध चलने वालों की भी वे खूब खबर लेते थे।

शतरंज की तल्लीनता में जेबें साफ

दिमागी कसरत कहिए या युद्ध व्यूह का खेल, शतरंज तथा दूसरा युद्ध व्यूह यानी दृष्टि का व्यायाम पतंग उड़ाना तथा शरीर के लिए शारीरिक व्यायाम और घुड़सवारी, खाने-पीने में सात्विक आहार दूध, दही, मक्खन, मौसमी फल, मोटी रोटी, मोटी दाल, साग-भाजी का सेवन कुल रीतिवश बहुमूल्य वेषभूषा यही इनके सामान्य शौक कहिये या व्यसन थे। हां एक विशेष बात और थी कि बादामों के सेवन के बिना एक दिन भी बिताना दुष्कर जीवन था। आजीवन घुटे बादामों की लस्सी यथासम्भव बन्द न होती थी। अभी यहां तो हम चढ़ती तरुणाई की बातें लिख रहे हैं।

पतंग के जहाज के साथ

कृपाराम जी बहत्तर तार की डोरी की पतंग उड़ाते थे, साथ में चार पहलवान अंगरक्षक का काम करते थे। पतंग क्या उड़ाते थे पतंग का जहाज ही उड़ाते थे। वे पहलवान घिर्री पकड़ने पर रहते थे। एक बार की घटना है कि पतंग आकाश में खूब लहर ले रही थी। एक बार वायु के प्रबल झकोरों के कारण पतंग भी वेग पकड़ गई और इस कारण जमीन में सुदृढ़ गड़े हुए खम्भे उखड़ गए। इस समय डोरी से चिपटे, पतंग पर दृष्टिबद्ध किये तल्लीन कृपाराम पतंग के साथ, आकाश में उड़ने वाले ही थे कि उन पहलवानों ने समय सूचकता से घिर्री को छोड़ इन्हें पकड़ा और संभाला अन्यथा यह आकाश में ही उड़ते नजर आते और भयंकर दुर्घटना ग्रस्त हो जाते।

भयंकर भूत भगाये

अरुण तरुणाई पर चढ़ते कृपाराम की द्युति से दंग जगरावां के कुछ नागरिक जहां प्रसन्न मुद्रा में हो जाते थे—वहां कुछ चमकते युवक ईर्ष्यावश इनके पौरुष की परीक्षा के प्रयोगों का षडयंत्र भी रचते थे, पर किसी बात में किसी से भी न दबने वाला निर्भीक कृपाराम के सांच को आंच आना सदा असंभव ही रहता था। एक बार की घटना है कि कुछ शरारती जवानों ने इनसे शर्त लगाई कि यदि तुम भूत का मुकाबला कर उसे भगा दो तो हम उन्हें एक रु० ईनाम देंगे। वीरता के गौरव से प्रभावित इन भोलानाथ ने वह शर्त झट मान ली। उन जवानों के बताए अनुसार रात में एक श्मशान को गए, पर रास्ते में ही इस बुद्धिशाली जीव को ध्यान आया कि मैं आज बिल्कुल खाली हाथ निश्शस्त्र आया हूं। उन प्रतिस्पर्धियों से आज का यह करतब अगले दिन के लिए स्थगित कर दिया। दूसरे दिन की शर्त अपनी ओर से आपने दस रुपये की लगाई। घर से सवेरे ही एक लुहार के पास बढ़िया ठकुए में बढ़िया हत्था लगवाया और नियत किये हुए रात के समय उस श्मशान की ओर अकेले ही प्रयाण किया। उन फरेबी लोगों ने इन्हें भयाक्रान्त करने का जाल श्मशान में तैयार कर ही रक्खा था। उस गहन अन्धकार ग्रस्त श्मशान में हुंकारते हुए जैसे ही कृपाराम ने कदम रखा कि एक काला कलूटा आदमी जो भयंकर रूप धारण किये हुए था इनके सामने आया और उसके साथी बनावटी भूतों ने भयावह कुहराम के साथ इन पर चढ़ाई की। जैसे ही वे इनके कुछ निकट आये कि इन्होंने अपना

फरसा उठाया। ज्यों ही कृपाराम का कदम उन्होंने आगे बढ़ते भांपा त्योंही उन्हें अपनी जान बचाने की पड़ी और वे वहां से चम्पत ही नजर आए। कृपाराम अपने को सफल मान फरसा फहराते और दहाड़ते घर लौटे।

शैतान घोड़े की सवारी

इनके घर का एक घोड़ा बड़ा तूफानी था, उस पर सवारी करना तो क्या उसके पास जाने में भी नौकर-चाकर आदि सब डरते थे, पर कृपाराम में जाने कौन-सा जादू था कि जहां यह उसके पास गए कि वह कुछ सीधा बन जाता और यह मौज से उस पर सवारी गांठकर उसे सीधा करने के लिए दूर तक घुमाने दौड़ाने को ले जाते थे।

चाकू चल गया

एक बार कोई व्यक्ति इनसे अकारण झगड़ा कर बैठा। इन्हें गाली गलौच या व्यर्थ झगड़ने का स्वभाव ही न था, पर अन्तर आवेश तो बहुत काफी भरा हुआ था। उस व्यक्ति को इन्होंने दो एक शब्दों से सोच-समझकर बोलने को कहा, पर वह फिर भी बकता ही चला गया। तब इन्होंने उस पर चाकू चला दिया और वह घायल हो गया। परन्तु कृपाराम किशोर एक प्रभावशाली घराने का लड़का था इसलिए यह मामला आगे नहीं बढ़ा।

बादामों की बोरी उदर दरी में

स्वामी भास्करानन्द जी सरस्वती (श्री पं० भीमसेन जी शर्मा) दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह की भूमिका में लिखते हैं—

"एक बार घर के कामों को अस्त-व्यस्त करने के कारण इनके पिता जी ने अपने सम्बन्धी की एक दुकान पर ढंग से काम सीखने के लिए बैठा दिया। उस दुकान पर बादामों की कई बोरियां बेचने के लिए रखी हुई थीं। आपने दुकान पर जाकर सबसे पहले बादाम खाना शुरू किया और धीरे-धीरे कुछ काल में एक बोरी उदर ब्रह्म को समर्पित कर दी। इनके भाई ने जब कुछ काल बाद पूछा कि बादामों की एक बोरी नहीं मिलती तो आपने फर्माया कि "उस बोरी के बादाम मैं सब खा गया" वे कहते ही क्या? चुप हो गये और अपनी दूसरी कपड़े की दुकान पर बैठा दिया।

व्यापार का रुपया तीर्थ यात्रा में

'क्या पं० कृपाराम शर्मा वैश्यों की तरह कपड़ा बेचना सीखें? हरगिज नहीं केवल आराम से कभी-कभी बैठ जाया करते थे। एक बार वहां भी बैठे-बैठे आपको "द्वारका रामेश्वर" यात्रा की सूझी, पर जाते कैसे? कई सौ रुपए चाहिये आखिर को आपने जाने का इरादा पक्का कर ही लिया और "जगरावां" से चल कर लुधियाना पहुंच गए, उन दिनों जगरावां में रेल न थी लुधियाना से ही कपड़े की गांठें जाया करती थीं। लुधियाना की जिस दुकान पर इनका लेन देन था उसी पर आपने पहुंच कर देखा कि दो गांठें कपड़ों की १४०० रुपये की आई हुई हैं उन्हीं का आपने वहां ही भुगतान कर लिया अर्थात केवल ७०० रुपए में दोनों गांठों को बेच कर अकेले ही बम्बई की तरफ रवाना हुए। जब घर वालों को मालूम हुआ कि लड़का घर में नहीं आया तो इधर-उधर तलाश होने लगी। लुधियाने जाकर लोगों को मालूम हुआ कि १४०० रुपये का माल ७०० रुपयों में देकर आप बम्बई की तरफ द्वारका जाने के लिए रवाना हो गए हैं। घर वाले सन्तोष करके बैठे और कुछ दिन बाद द्वारका और रामेश्वर होते हुए आप लुधियाने वापस आये। लुधियाने तक सब रुपया समाप्त कर चुके थे, गांठ में एक पैसा भी न था। अतः आप लुधियाने से जगरावां

तक पैदल ही पहुंचे।" पं० जयराम शर्मा ने भी यह वृत्तान्त मुझे सुनाया था और कहा था कि "सम्वत् १९४० वि० में जब कपड़े की दुकान चल रही थी तब कर्ताराम जब भोजन के लिए घर जाते थे उस समय कुछ ताक लगाए रखने वाले लोग कृपाराम से कपड़ा उधार ले जाते थे और कुछ लोग मुफ्त भी ले जाते थे।"

रुई, चने और खरबूजों का व्यापार

पण्डित कृपाराम शर्मा से उनके पिता आदि मन में शिकायत रखते थे कि यह किसी काम में जम कर लगता नहीं है। श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज ने सन १९०३-४ ई० में हमें अनेक घटनायें सुनायीं थीं। सायंकाल के समय विशेष कर उपदेशक श्रेणी का छात्र मण्डल प्रायः उनको घेर कर बैठता था तब मौज में आकर कभी कुछ सुना दिया करते थे। मैं अपने कानों सुनी बातें ही लिख रहा हूं। एक बार हम लोगों को सुनाया कि—

जब घर के बड़े मुझे व्यापार में अयोग्य बताने लगे तब मैंने एक बड़े शहर में जाकर कई सौ बोरी चने खरीद लिए और दूसरी जगह के कुछ महगे भाव का पता मैंने लगा लिया था। किराये आदि का औसत भी मैंने समझ लिया था। मैंने फुर्ती से जाकर वे चने की बोरियां उस शहर में जाकर बेच दीं जिसमें बहुत अधिक लाभ हुआ और वह नकदी मैंने ज्यों की त्यों पं० जी को सौंप कर पूछा बतलाइये कि मुझे व्यापार करने की योग्यता है या नहीं। पिता जी हास्य मुद्रा में चुप रहे। कृपाराम जी का किसी को भी निरुत्तर कर देना एक बायें हाथ का खेल था। एक घटना उन्हीं दिनों में और सुनाई कि मुझे एक बार ऐसी धुन लगी कि खरबूजे सर्दी की ऋतु में क्यों न तैयार किए जावें। यदि इस ऋतु में खरबूजे तैयार हों तो अत्यधिक आर्थिक लाभ हो। मैंने एक दुकान से कई सौ थान मार्कीन के खरीदे और एक दुकान से बहुत सारी बल्लियां और बांस खरीदे। उधर मैंने मजदूरों को खेत की खुदाई, खाद आदि के लिए आदेश दे दिया और बीजादि का प्रबन्ध कर लिया। पानी का भी प्रबन्ध एक कुएं से कर रखा था। मैंने एक बड़े खेत में ये तैयारियां की थीं। पहले मैंने नाप से बल्लियां गड़वायीं और ऊपर भी कहीं बांस कहीं बल्लियां बंधवाईं और उस विशाल क्षेत्र को विशाल शमयाने से ढाक दिया। विधि के अनुसार बढ़िया खरबूजे के बीज उसमें यथा स्थान बोए गए और चौकीदारी तथा पानी आदि का प्रबन्ध पर्याप्त कर दिया। दो ढाई महीने बाद खरबूजों की बेलों पर फूल आने लगे और प्रारम्भ में जो लोग मेरे इस काम को पागलपन का बताते थे सब चुप रहने लगे। मैंने ऊपर की ओस आदि से रक्षा का प्रबन्ध ठीक रखा था। समय पर खेत में खरबूजे खूब लगे और उनकी बिक्री से लाभ भी पर्याप्त हुआ। इसके पश्चात् अब मुझे यह कोई नहीं कहता था कि मुझे व्यापार करना नहीं आता। पर मैं ऐसे कार्यों में फंसे रहना नहीं चाहता था।

व्यापार में इनको जमाने के लिए इन्हें पहले इनके चाचा पं० जयराम शर्मा के साथ लगाया गया। वे रुई का व्यापार करते थे। व्यापार में कृपाराम शर्मा को ठीक आमदनी होती रही, परन्तु वह सारी आमदनी वे पतंग और पतंग की डोरी में ही खर्च कर देते थे।

विद्या का पात्र गुरु चरणों में

ईश्वर ने कृपाराम को सुडौल अंग उपांग, पुष्ट गात्र, काम काज में स्फूर्ति, सुन्दर आकृति, बड़ा ललाट, प्रस्फुलित दन्तावली और तेजस्वी गौर वर्ण दिया ही था, वह उस ईश्वरीय सम्पत्ति को दंड बैठक, मुगदर की कसरत और अखाड़े में कुश्ती लड़ कर उन्नति करते रहे। शरीरस्थ महान रिपु आलस्य तो इन्होंने मानो जीवन भर को मार भगाया और अपने को श्रमी स्वभाव का बना कर आश्रमजीवी सुपात्र बना लिया अर्थात् पितृ कुल में ही अपने को आचार्य कुल के योग्य अधिकारी बना लिया। सरस्वती उपासक इन

के पिता में इनके ज्ञान विकास की तत्परता में कभी भी शिथिलता नहीं आती थी। उनकी ससुराल फीरोजपुर (पंजाब) में थी। वहां उनके साले श्री पण्डित कृष्ण गोपाल जी एक अच्छे ग्रालिम, फाजिल, विद्वद्विचक्षण एक प्रतिष्ठित और तेजस्वी व्यक्ति थे। वे फारसी के ऊंचे विद्वान् और वहां के बड़े स्कूल के हैडमास्टर थे। उनके एक सहकारी अध्यापक श्री राधाकृष्ण जी गणित के विशेषज्ञ थे। इन साधनों के कारण पिता जी ने कृपाराम को विशेष अध्ययन के लिए मामा कृष्ण गोपाल जी की सेवा में भेज दिया। मस्तिष्क के खेतों का खिलाड़ी कृपाराम वहां शौक से विद्यार्थी चर्या बिताने लगा। आप मामा जी से फारसी के उस काल की प्रसिद्ध पुस्तकें "करीमा" और "खालकबारी" पढ़ते रहे, पर गणित अध्यापक महाशय राधाकृष्ण जी ने तो इन्हें कुछ समय तक फूटी कौड़ी भी न सिखाई। यह बातें प्रसंगवश इनके पूज्य पिता जी को (जगरावां) विदित हुई। उन्होंने उन्हें तुरन्त जगरावां वापस आने को सूचित किया, पर पढ़ने के चाव वाला विद्यार्थी अपने संकल्प में शिथिल कैसे हो सकता था? कृपाराम के मन में "विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्" का भाव समाया हुआ था। वे फीरोजपुर डटे ही रहे और एक वर्ष तक यथापूर्व राधाकृष्ण जी की सुश्रुषा में तत्पर रहे। अध्यापक राधाकृष्ण जी ने एक दिन इन्हें पात्रता की परीक्षा में फांस दिया, उन्होंने कुएं से पानी के घड़े खींचने को आदेश दिया और चुप रहे. कृपाराम घड़े खींचने पर पिल पड़े। खींचते खींचते १९ घड़े खींच डाले, तब अध्यापक महोदय ने शाबाशी दी और घड़े खींचने से रोक दिया। अध्यापक महाशय अब किञ्चित जागृत हुए और एक दिन इन्हें गणित के दो चार नहीं दस पांच नहीं एक दम ६० गुर बता डाले। मस्तिष्क के धनी, मन के अवधानी, स्मृति के कोष कृपाराम ने एक ही दिन में वे साठों गुर अपनी धारणा शक्ति से कंठस्थ सुना दिए, तब तो अध्यापक तथा हैडमास्टर (मामा) स्तब्ध हो गए और उन्हें गणित शास्त्र का प्रसिद्ध गूढ़ ग्रन्थ "लीलावती" पढ़ाना आरम्भ कर दिया।

गणित मार्तण्ड इन्स्पेक्टर की कसौटी पर

लीलावती आदि के अभ्यास के बाद तो कृपाराम गणित शास्त्र के एक अद्भुत और प्रसिद्ध विशिष्ट वक्ता के रूप में प्रसिद्ध हो गए। अब यह गणित के कठिन से कठिन प्रश्नों का उत्तर मौखिक ही दे डालते थे। कहा जाता रहा है कि उस समय भारत प्रसिद्ध "मार्तण्ड" नाम के एक दाक्षिणात्य गणित शास्त्री अद्वितीय करके प्रसिद्ध थे। उनके बाद भारत में अब दूसरे नम्बर पर कृपाराम गिने जाने लगे। इसी स्कूल के एक अध्यापक के कहीं जाने पर इन्हें कुछ दिन उनका प्रतिनिधित्व करना पड़ा। इसी अन्तर में लाहौर से इन्स्पेक्टर महोदय पधारे तब इस छोटे अध्यापक को देख चौंके। इन्स्पेटर महोदय ने स्वयं कृपाराम जी को गणित के कई प्रश्न हल करने को दिए। कृपाराम जी ने उन प्रश्नों को मौखिक ही हल कर दिया। इसके पश्चात् इन्स्पेक्टर महोदय ने अब तीन लम्बे-लम्बे प्रश्न व्यापारिक ढंग से करने को दिए। तब इन्होंने पैंसिल उठाई और इन सवालों को बड़ी अच्छी तरह से हल करके लिखित रूप में इन्स्पेटर महोदय को दे दिया और साथ ही निवेदन कर दिया कि मैं एम० ए० के सवाल भी बहुत अच्छी तरह से कर सकता हूं। इन्स्पेक्टर दंग होकर चुप हो गए।

कृपाराम ने जब फीरोजपुर के हाई स्कूल की पूरी सात श्रेणियों की पढ़ाई पूरी कर ली तब आगे के अध्ययन के लिए इन्हें वहां से बुला लिया गया और अब घर पर ही पिता जी इन्हें "सिद्धांत कौमुदी" आदि ग्रंथों की पुनरावृत्ति कराने लगे। साथ ही इनकी आगे की आधुनिक शिक्षा को भी आवश्यक समझा जा रहा था इसलिए अब पिता जी ने इन्हें लुधियाना नगर के बड़े अंग्रेजी स्कूल में प्रविष्ट करा दिया। पर घर में व्यापार उद्योग की ओर भी इनकी प्रवृत्ति कराने का कार्यक्रम बनने लगा।

शक्कर की बोरियां कुएं में

कुछ काल आप जब लुधियाना हाईस्कूल में शिक्षा पा रहे थे तब ग्रीष्म ऋतु में आपके मन में एक विचित्र लहर उठी। नगर में ठण्डे पानी की तलाश में लोगों को कुछ बेचैन देख कर आपका हृदय पिघला और आप अपने चाचा पं० जयराम शर्मा से कोई निकट का अच्छा कुआ पूछने गये। पण्डित जी ने कुआ बता दिया। कृपाराम जी एक शक्कर की दुकान पर पहुंचे और वहां से एक या दो बोरियां शक्कर की खरीद लीं तथा वे बोरियां पूरी की पूरी आपने उस बढ़िया कुए में डलवा दीं। फिर क्या था, मुहल्ले भर में जो कोई भी पानी की तलाश में जाता उसे पानी की जगह शर्बत ही मिलता। यों दो दिन तक मुहल्ले भर में ठंडा शर्बत पानी की जगह पर उपयोग में आता रहा और कृपाराम जी के विशाल हृदय की वाह-वाह फैल गई।

माता की ममता और पुत्र की विरक्ति

पढ़ाई के व्यसनी कृपाराम का शालीय अध्ययन उस समय इसलिए छूटा कि इस समय के से ऊंची पढ़ाई के साधन सर्वत्र सुलभ न थे। केवल यत्र-तत्र ही महाविद्यालय थे, दूसरे यह कि कृपाराम आध्यात्मिक अध्ययन में डूबने लगे थे। केवल शुष्क साक्षरता उन्हें सन्तुष्ट नहीं कर पाती थी, तीसरे घर के गुरुजन उस समय की गतिविधियों के अनुरूप इन्हें व्यापार में निमग्न करने के लिए मथते रहते थे। इनकी पूज्य जननी श्रीमती हीरादेवी एक ही अभिलाषा में रहती थी कि कृपाराम घर में झांकता ही नहीं सो यह कैसे भी गृहस्थाश्रम की ओर टुक तो देखे। माता इस निमित्त अपनी अलग ही खिचड़ी पकाती थीं अर्थात वे सयानों तक से उपाय पूछतीं और जादू टोना कराने से भी नहीं चूकतीं। इधर कृपाराम एक आत्मचिन्तक के रूप में पक रहे थे। यह इनकी आयु का उन्नीसवां वर्ष था। किसी भी कार्य का चाहे वह कितना ही दुष्कर क्यों न हो सामना करने से पीछे पैर न हटाना इनका जन्मजात गुण था। इधर वृद्धों को प्रसन्न रखना भी इनमें पैतृकशील था। अतएव थोड़ा ध्यान कभी घर की ओर भी देते पर अन्दर से तो यह (वेदान्त केसरी) के रूप में खिलते जा रहे थे।

कुशाग्र बुद्धि कृपाराम तेली के से बैल की चाल की स्कूल की पढ़ाई में वहीं के वहीं ठहर नहीं पाते थे। साधारण जन समुदाय के रूढ़िग्रस्त सामाजिक जीवन, अन्ध विश्वास, ईश्वर पूजा की अन्ध परम्परा का मनोमंथन इनका चल ही रहा था। यों यह कुछ दिन दुनिया को समझने में लगे रहे और साथ ही इन्हीं दिनों ये फारसी, उर्दू की कविता करने लग गये थे। घर में लेन-देन साहूकारी और दुनियादारी के अन्य कामों से इनका मन प्रायः ऊब जाता था। विशेष कर हिन्दू समाज का धर्म में ओत-प्रोत जीवन इनके ऊहा-पोह से भरे तर्कशील हृदय को पकड़ नहीं पाता था। क्योंकि हिन्दू समाज का सम्पूर्ण धर्म व्यवहार इनकी कसौटी पर जंचता न था। स्वावलम्बन स्वतन्त्र विचार और संचित संस्कार आदि गुणों के कारण संसारी जीवन को सूक्ष्मता से परखना इनकी प्रमुख प्रवृत्तियां थीं। इसी मन्थन में यह अपने अन्तर्नाद को प्रस्फुटित करने के लिए अब उर्दू, फारसी, पंजाबी और सामान्य भाषा में कुछ पद्य रचना करने लगे थे और उनको सम्भाल कर रखते भी जाते थे। अर्थात् तरुण कृपाराम की कर्म भूमि कहीं अन्यत्र ही बन रही थी। अपने तर्क अनुसन्धान और अन्तर्द्वन्द्व के अशान्त सागर में वे झकझोरे जा रहे थे, दूसरी ओर प्रबल वैराग्य और सृष्टि-संगीत की मधुर ध्वनि उन्हें सांत्वना भी दे रही थी।

पहला सन्यास, दयानन्द से शास्त्रार्थ :
सुराग लेखनी तथा वाणी से लगा, पारसमणि का स्पर्श

पाठक पहले पढ़ चुके हैं कि युवक कृपाराम संसारी मामलों से उन्मनस्क था, दुनिया की धार्मिक और सामाजिक परम्पराओं का गहराई से पर्यालोचन कर रहा था। जिनके विषय में वह उर्दू, फारसी में पद्यात्मक रचना भी किया करता था। खुले आकाश में उड़ने वाले आजाद पंछी को लोहे या सोने के पिंजड़े एक समान हैं। वैभवशाली संभ्रान्त कुटुम्ब अपने हिरण्मय पात्रों में कराये गए व्यंजन भोगों से इस आत्म तत्व विवेचक को फांस नहीं पाता था। निदान एक दिन विरक्त कृपाराम घर से भाग ही तो खड़े हुए। लापता हो गए। परिजन वर्ग चिन्ता मग्न हो गया, चिट्ठी पत्रियां दौड़ीं, ढूंढने वालों ने दौड़ लगाई। पर कहां पता चलता है? पता तो तब लगे जब यह आत्म चिन्तक मालमस्त साधुओं की तरह मेलों में घूमता हो या भीड़-भाड़ में जाने का शौकीन हो। युवक पहुंचा, जम्मू कश्मीर की कंदरा में, भयंकर जंगलों में, एकान्त में। दादा, माता, पिता, भ्राता सभी उद्विग्न और खिन्न मन रह कर ढूंढ तलाश के यत्नों में संलग्न थे।

कहीं अकस्मात् आगरे के एक किताबफरोश के यहां कृपाराम के चाचा पं० जयराम जी शर्मा की दृष्टि एक किताब "गंजे आजादी" पर पड़ी। हाथ में लेकर देखी तो मुसन्निफ का नाम, उपनाम और तखल्लुस उसमें कृपाराम का ही सब कुछ था। किसी पद्य में आजाद, किसी में नित्यानन्द और कुछ में कृपाराम भी था। किताब का हाथ आना था कि जयराम शर्मा बगाबाग़ हो गए। किताब पर दिल्ली के लाला जंगजीमल प्रकाशक का नाम पता छपा था। अब दिल्ली में उन पुस्तक प्रकाशक से बातचीत की गई तब उसने बताया कि यह किताब मुझे छापने को एक फकीर दे गया था और वह हरिद्वार चला गया। इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानता।" इतने वृत्तान्त से गुरुजनों को कुछ परितोष तो मिला पर ढूंढ ज्यों कि त्यों जारी रही।

श्री पं० जयराम जी शर्मा ने मेरठ में मुझे यह संस्मरण नोट कराते समय बतलाया था कि इस गृहत्याग से पूर्व कृपाराम के एक पुत्र नृसिंह का जन्म हो चुका था। पं० जी ने समय के सम्बन्ध में मास, सन, संवत कुछ नहीं बताया। देहली के पुस्तक प्रकाशक को पुस्तक देते वक्त कृपाराम जी यह भी कह गये थे कि इस पुस्तक की बिक्री से जो लाभ हो वह अमुक व्यक्ति को दे देना क्योंकि उसको अपनी कन्या के विवाह के लिए कुछ धन की आवश्यकता है।

स्व० पं० मुनीश्वर जी शर्मा ने एक ७ पृष्ठ का डायरीनुमा ट्रैक्ट (सन १९१२ ई० में श्री स्वामी दर्शनानन्द जी के जीवन काल में ही) छापा है। उससे भी सन तारीखों के तथ्य का बोध नहीं होता, फिर इन्हीं पण्डित जी ने लाहौर से प्रकाशित होने वाले हिन्दी मासिक 'बलिदान" के अंकों में (सन १९२२ ई०) में जो नोट दिए हैं, वे भी समय के तथ्य बताने में सहायक नहीं हैं। स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज अन्तिम वर्षों में कहा करते थे, कि मैंने ऋषि दयानन्द के ३७ व्याख्यान सुने हैं, ३७ वर्ष आर्य समाज का काम कर दिया। अब गाड़ी पुरानी हो गई, अब दूसरी में बैठना होगा। स्वामी जी महाराज की संस्थापित संस्थाओं के विद्वानों ने यदा कदा उनके संक्षिप्त "जीवनी के लेख" लिखे हैं, उनमें प्रथम सन्यास का विवरण नहीं है और न यही कि ऋषि दयानन्द के व्याख्यान उन्होंने कब सुने।

हम यहां इस दिग्विजयी की प्रथम सन्यास दीक्षा का और उसके ऋषि दयानन्द के उपदेश के श्रवण का निश्चित समयान्वेषण कर रहे हैं। यह सुनिश्चित हो हो गया कि युवक सन्यासी 'आजाद",

"नित्यानन्द" के अब तक के विचार ऋषि दयानन्द प्रतिपादित वैदिक सिद्धान्तों से अभी कोसों दूर थे। पं० जयराम जी शर्मा ने मेरठ में संस्मरण लिखवाते समय मुझे बताया था कि पंजाब या हरिद्वार आदि की ओर तक कृपाराम का घर से भागकर जाने का पता दिल्ली में लगा। महर्षि दयानन्द ने उस समय की यात्रा में १८७९ ई० के जोलाई में मुरादाबाद आदि में प्रचार किया था फिर अक्टूबर १८७९ ई० में तथा फिर जनवरी १८८० ई० में इनका दिल्ली आगमन हुआ है और फिर बाद के मासों में मेरठ तथा हरिद्वार कुम्भ में प्रचार किया है—फिर जून में देहरादून में विश्राम लिया है। यहां अनुमान होता है कि ऋषि दयानन्द के कुछ व्याख्यान इन्होंने दिल्ली और हरिद्वार में सुने होंगे। "मैंने ३६ वर्ष काम कर दिया" इस वाक्य से क्या हिसाब बैठता है ? सन् १८७८ ई० से सन् १९१३ ई० तक उनके निर्वाण तक ३६ वर्ष होते हैं अर्थात् जब वह प्रथम सन्यास में पकड़े जाकर घर लाये गए तब मानों वह ऋषि दयानन्द के मिशन का आरम्भ कर चुके थे और फिर देखिये कि तभी से एक दिन को भी रुके बिना उनकी वाणी और लेखनी की धारा अक्षुण्ण बहती रही। बीना नगर में वे ईसाई पादरियों से बहस करते हुए खोज में पकड़े गए थे। फिर ३६ या ३७ व्याख्यानों का अवान्तर समय लम्बा और उन व्याख्यानों के स्थानों का भिन्न होना स्वाभाविक है—फिर आगे अमृतसर की घटना के समय की कल्पना भी सुनिए।

एक और अनुसन्धान

इन पंक्तियों का लेखक बदायूं गुरुकुल में १९०३ से १९०४ ई० में जब वहां की उपदेशक श्रेणी में पढ़ता था, तब हम विद्यार्थियों को विनोद प्रसंग में स्वामी जी अपने बाएं पैर में एक दाग दिखाकर कहते थे कि यह निशान उस समय का है जब मैं अमृतसर में स्वामी दयानन्द का व्याख्यान सुन रहा था—तब उस सभा में विघ्नकारियों ने ईंट फेंकी थीं, तब इस पैर में मेरे भी एक ईंट लगी थी, इस कथन के प्रसंग पर स्वामी जी की मुख मुद्रा इतनी प्रफुल्लित मालूम होती थी, मानो यह कोई शील्ड जीतकर लाए हों, वास्तव में ऐसे सत्संगों के संगी ही धन्य हुए हैं।

अब पाठक ऋषि दयानन्द के दिग्विजयी दौरों के इतिहास के पन्ने पलटें तो विदित होगा कि उनके सन् १८७८ ई० के जनवरी, फरवरी, मार्च यह तीन मास झेलम, अमृतसर, गुजरात, वजीराबाद, गुजरांवाला, मुलतान और लाहौर के दौरे के हैं–फिर इस सन् का उत्तर सत्र रुड़की, अलीगढ़, मेरठ और दिल्ली के दौरों का है। अब चलिए सन् १८७९ ई० की पहली छमाही की ओर तो ऋषि दयानन्द का यह अभियान सहारनपुर, दिल्ली, मेरठ, हरिद्वार और कुम्भ का है और फिर देहरादून में ऋषिवर ने कुछ विश्रान्ति प्राप्त की है।

इस समय कृपाराम शर्मा की आयु १९ वर्ष के मध्य पर होगी, वे गृह त्याग के बाद कितने दिन पंजाब, दिल्ली, हरिद्वार आदि में, कितने दिन काश्मीर के अरण्यों में और फिर कितने दिन पेशावर, रावलपिण्डी आदि होते हुए मध्य पंजाब में घूमते रहे यह सन् १८७९ ई० के मास और उसके निकट के मास पक्षों तिथि का नपा तुला अवधि मान हम नहीं नाप सके, पर यह निश्चित है कि उनके ऋषि दयानन्द के उपदेश श्रवण का समय ऋषि के उपर्युक्त यात्रा क्रम के अन्तर्गत ही है उससे बाहर नहीं। सम्भव है ऋषि दयानन्द के एक दो व्याख्यान सुनने के बाद ही उन्होंने आश्रम परिवर्तन की बात सोची हो और उनसे शास्त्रार्थ करने का साहसिक विचार किया हो और एतदर्थ ही सन्यास दीक्षा लेकर हरिद्वार आदि की ओर पहुंचे हों।

सन्यास वेष कहां पहना

अहम् ब्रह्म बने हुए फिर भी ज्ञान पिपासु युवक कृपाराम ने गेरुआ साधु वेष किस वनस्थली में

घोषण किया, इसका कुछ आभास युवक की गंजे आजादी पुस्तक के पृष्ठ २६ के निम्न पद्यों से मिलता है कि वह स्थान हो न हो जम्मू-काश्मीर की रमणीय कल्लू घाटी होनी चाहिए। पद्य इस प्रकार है—

कुल्लू में गेरी रंग से—बना आत्मा रूप,
टुकड़े मांगे विसी के नाम कहावें भूम।
कुल्लू में गेरूए रंगी तरक किरपा को कूप,
काम करी सब चोर के घर साधु का रूप।

कृपा की कूप अर्थात् कृपाराम रूपी ब्रह्म् भाव, विसी के अर्थात् उसी जगत् पिता के अन्तिम पंक्ति का भावार्थ यह है कि साधु के कपड़े तो चोर डाकू भी पहन लेते हैं।

दयानन्द ने दुनिया बदल दी : पादरियों से मुठभेड़ में पकड़े गए

ऋषि दयानन्द के अनेक व्याख्यान सुनने के पश्चात् ब्रह्म में भ्रम में भ्रान्त बने आजाद कवि नित्यानन्द अब तो नित्य ही आनन्द में रहने लगे थे और भ्रान्त धारणाओं के निवारण हो जाने से अर्थात् दयानन्द पारसमणि से छूकर यह लोहा अब सोना बन चुका था। पर यह रहे घाटे में हां, कहां तो वे थे सच्चिदानन्द ब्रह्म और कहां अब रह गए केवल चिदानन्द जीव। सामाजिक कुरीतियों को और मत-मतान्तरों की मिथ्या कल्पनाओं और संसारी मोह माया को तो यह पहले ही परख चुके थे—इनके उन विचारों पर अब दयानन्द उपदेश श्रवण ने पक्की मुहर लगा दी। हृदय की तड़पन शान्त हुई और मनचाही सिद्धि मिल गई। प्रकृति जीव और ब्रह्म इस त्रयी के गुण, कर्म, स्वभाव का गहरा गवेषण अब पूर्ण हुआ। इस उपदेश श्रवण की सिद्धि के पश्चात् अब यह अपने गुरुवर के पदचिन्हों पर अपने चरण रखने लगे अर्थात् यत्र-तत्र उपदेश करने में रत हो गए।

इधर तो गुरु शिष्य का जंगल में मंगलोत्सव पूर्ण हुआ था, उधर घर के लोग लाडले कृपाराम की खोजबीन में भटक रहे थे।

पाठक पढ़ चुके हैं कि कृपाराम के चाचा जयराम शर्मा को गंजे आजादी पुस्तक से इनका कुछ सुराग तो मिल ही गया था, घर के लोग ऐसे ब्रह्म विद्या व्यसनी शिक्षित युवक साधु को ढूंढ़ते फिर ही रहे थे।

ईसाई पादरी अपनी परम्परा के अनुसार दीनानगर (पंजाब) के बाजार में एक जगह ईसूमसीह का संदेश देते हुए लेक्चर झाड़ रहे थे। वहां उनसे एक गेरूआ वस्त्रधारी साधु भिड़ा हुआ था और बात-बात में पादरी साहब की बातों को काट रहा था, स्वाभाविक तौर पर वहां थोड़ा जनसमुदाय इकट्ठा हो गया था—पं० जयराम जी शर्मा वहां कहीं से आ निकले और भीड़ देखकर खड़े हो गए। देखते क्या हैं कि सबके भतीजेराम कृपाराम ही आराम से पादरी साहब की खबर ले रहे हैं। बस फिर क्या था, अब तो नित्यानन्द रूपधारी कृपाराम जी पकड़े ही गए। अब चाचा से अलग कहां जा सकते थे। पिता पं० रामप्रताप जी भी वहां बुला लिये गए। यों घर के मेले झमेले में कृपाराम जी फिर फंस गए और जैसे-तैसे घर आने पर राजी किये गए। राजी तो हो गए पर जिसका सारा जीवन शर्तमय रहा हो—वह बिना शर्तों के टस से मस कसे हो सकता था। आपने तीन कड़ी शर्तें पेश कर दीं, आप्तजनों ने वे मान लीं। उन्हें पाठक आगे चलकर पढ़ेंगे।

चौबे जी दुबे ही रह गए

पं० कृपाराम शर्मा ने ही बहुत दिनों बाद पं० जयराम जी को बताया था कि मैं वेदान्त पर

स्वामी दयानन्द के साथ बहस करने के पक्के इरादे से ही केवल उनके पास पहुंचा था—पर इसकी नौबत ही नहीं आई और उल्टी उनके व्याख्यानों के विचारों को सुनने की लगन लग गई और मैं अपनी सारी सुधबुध भूल गया। पहले उनके व्याख्यान मुझे कम जचे पर बाद को मुझे वे सिद्धान्त सत्य की कसौटी पर जंचते मालूम पड़े और उन पर मेरा विश्वास उत्तरोत्तर जमने लगा, फिर मैं उनके व्याख्यान सुनना छोड़ता ही न था। पाठक इसी को कहते हैं, चौबे जी छब्बे बनने चले—पर रह गए दुबे ही।

घर लौटने की कड़ी शर्तें : आर्य पथिक से घनिष्ठता

अब देखिये कि जब सन्यासी युवक कृपाराम पकड़े जाकर फिर घर पर लाये जा रहे थे, तब आप अपनी तीन शर्तों पर घर आने को राजी हुए। पहली शर्त—यह कपड़े नहीं उतारूंगा। दूसरी शर्त—घर में न जाकर बैठक ही में रहूंगा। तीसरी महत्वपूर्ण शर्त—स्वामी दयानन्द लिखित सब पुस्तकें मंगवा देनी होंगी। इन शर्तों पर आप घर आ गए और इनकी शर्तों को मूर्त रूप दिया गया। ऋषि दयानन्द के सभी ग्रन्थ शीघ्रता से मंगवा दिये गए और वह अपनी बैठक में आसनबद्ध धीर होकर उन ग्रन्थों में तल्लीन हो इसी एक साधना में लग गए। अब आप ऋषि दयानन्द की वाणी के आश्वस्त और प्रगाढ़ श्रद्धाभाजन बन चुके थे। आर्य पथिक पं० लेखराम जी का परिचय भी आप प्राप्त कर चुके थे अतएव उन्हें पेशावर को पत्र लिखा कि स्वामी दयानन्द जी महाराज को जगरावां पधारने का समय निकलवाइये। उन्हें निमंत्रण भेजिए। उस समय आर्य पथिक आर्य गजट का सम्पादन कर रहे थे। उन्होंने उत्तर दिया "ऋषि दयानन्द फीरोजपुर आदि की ओर जैनों से शास्त्रार्थ करने चले गए हैं।"

स्वामी जी के पुत्रों द्वारा प्रकाशन कार्य : गंजे आजादी में आर्यमत का खण्डन

गंजे आजादी पद्यमय पुस्तक २८ पृष्ठ की है। इसमें १३ कवितायें हैं। पहले दो में बारह मासा, ३ में अठारह गजलें हैं, ४ में ७ रेखता हैं, ५वें में ६ रूमाल हैं, छठवें में ४ पद हैं, ७वें में फारसी पदस्त्रोत हैं, ८वें में कुण्डलियां-कथा हैं, ९वें में मुसद्दस सन्त लक्षण, १०वें में चौपाई—करसी महातम, ११वें में दोहा, १२वें में अठबारा–ईश्वर की हमद, १३वें में अशआर (शेरें) हैं। इन पद्यों की भाषा पृथक्-पृथक् हिन्दी, उर्दू, फारसी और पंजाबी है। इनमें "तखल्लुस" के बतौर कुछ पद्यों में "आजाद" कुछ में विद्यानन्द और कुछ में कृपाराम छपा है। पं० कृपाराम शर्मा के आरम्भिक ट्रैक्टमाला में एक ट्रैक्ट कनफुकवे गुरु और बैल की पूंछ भी है। उस पुस्तक में निम्न दो पद्य इसी पुस्तक के छपे हैं—

(१)

आत्म बोध बिन फिरें भ्रमते। सब धोके की टाटी में।
कोई धातु में ईश्वर मानत। कोई पत्थर कोई माटी में।
वृक्ष में कोई जल में कोई। कोई जंगल कोई घाटी में।
कोई तुलसी रुद्राक्ष कोई। कोई मुद्रा कोई लाठी में।
भगत कबीर कोई कहें नानक। कोई शंकर परिपाटी में।
कोई नीमार्क रामानुज है। कोई वल्लभ परिपाटी में।
कोई दादू कोई गरीबदासी। कोई गेरू रंग की हाटी में।
कहै आजाद भेष जो धारे। जले नरक की माटी में।

(२)

ज्ञान खड्ग को कर में रखो, धीरज ढाल ओट कर लेयो।
बावन टुकड़े या मन के कर, मरदन अहंकार कर देयो॥

काम क्रोध यह शत्रु मारो, लोभ मोह द्रोही हन देयो।
आशा तृष्णा जड़ से काटो, तब रन जीत सहज से लेयो।।
मान अपमान न राखो कोई, निन्दा राग भस्म कर देयो।
समता-रूपी तोप बना के, जड़ से किला गेर सब देयो।।
पिछले कर्म न सोचो किंचित, अगले मन को करन न देयो।
वेद विहित सब कार्य कमाओ, मुक्ति सुगम सहज से लेयो।।

प्रथम सन्यास प्रकरण में कृपाराम शर्मा की इस गंजे आजादी पुस्तक का हमने उल्लेख किया है उस समय तक वे आर्य समाज और ऋषि दयानन्द की शिक्षाओं से वंचित ही थे और इसीलिए उन्होंने उसमें आर्यमत और ब्रह्म समाज आदि सभी मतों की आलोचना की है। स्वामी जी के देहावसान के पश्चात् उनके सुपुत्र पं० नृसिंह शर्मा तथा पं० रामनाथ शर्मा ने उनकी वसीयत के अनुसार दयानन्द ट्रैक्ट सोसायटी बनाकर उनके अमूल्य ग्रन्थ रत्नों का उर्दू में प्रकाशन आरम्भ किया था और "दर्शनानन्द" ,नाम का साप्ताहिक पत्र भी चलाया था, उसी समय में कुछ भक्तों के आग्रह से गंजे आजादी को उन्होंने दुबारा छपवा दिया था तब नृसिंह शर्मा जी ने यह पुस्तक प० अमीचन्द के प्रबन्ध से ब्राह्मण स्टीम प्रेस लाहौर में मुद्रित कराई थी, इसमें एक बड़े पृष्ठ का उन्होंने दीबाचा भी लिखा है। जिसकी आरम्भिक पंक्तियों में श्री पं० नृसिंह शर्मा जी इस प्रकार लिखते हैं "पाठक महोदय आप अच्छी तरह जानते हैं कि यह किताब उस महात्मा की तसनीफ है जिसका युक्तिवाद तमाम हिन्दुस्तान में मशहूर हो चुका है, उनके पूर्व के विचार जबकि वे अभी आर्य समाज में प्रविष्ट नहीं हुए थे और बचपन की ही हालत में थे-सर्वसामान्य पर प्रकट किए जाते हैं। होनहार शक्तियां आरम्भ से ही उच्च भावों को प्रकट करती रहती हैं। चूंकि यह किताब एक ऐसे ढंग से बनाई गई है, जिसमें नवीन वेदान्त की झलक है और लोगों में ख्वामख्वाह इसका प्रभाव पड़ता नजर आएगा इसलिए जरूरी समझा गया कि चन्द बातें पाठकों के कर्णगोचर करा दी जाएं। पहली तो यह कि कुछ महाशयों ने कहा कि यह किताब न छपाई जावे क्योंकि यह नवीन वेदान्त की है, परन्तु मैंने सच्चाई को छिपाना उचित नहीं समझा। सत्यमेव जयते नानृतम्—इस वचन के अनुसार सच्चाई प्रकट करने में कोई खराबी नहीं हो सकती। जिस वक्त यह किताब लिखी गई थी, उस समय आर्य समाज का प्रचार बहुत कम था, कहीं-कहीं आर्य समाज नजर आते थे। इन दिनों चूंकि पं० कृपाराम जी को वैदिक धर्म की तलाश थी और उनको असली वेदरूपी सूर्य न मिलने के कारण इस नवीन वेदान्त से काम लेना पड़ा।" पं० नृसिंह जी शर्मा ने इत्यादि भाव प्रदर्शित किये हैं।

ख्याल

कोई मस्जिद कोई ठाकुर द्वारे, कोई गिरजे में जाता है।
अपने-अपने मजहब को यारो हर एक बड़ा बनाता है।
कोई काबा कोई काशी यारो, कोई रोम बनाता है।
मन की भटकना मिटे कहीं, नहीं हमें ताज्जुब आता है।
कहीं हिन्दू कहीं मुसलमान और, कहीं यहूदी बनते हैं।
कहीं ईसाई जैन कहीं, सब झूठी तानी तनते हैं।
कोई कहे हमको ब्रह्मचारी, बनते कोई उदासी हैं।
कबीर पंथी और कोई निर्मली, कोई बनते गरीब दासी हैं।

दादू पंथ विरागी कोई, कोई जोगी बन के वासी हैं।
कोई ब्रचारी कोई संयोगी, कोई बने योग अभ्यासी हैं।
कोई दंड कमण्डल के सन्यासी, कोई गुसांई बनते हैं।
मन की कल्पना यही है निश्चय झूठो तानें तनते हैं।
कोई बने आर्या मजहब जगत को हैं भरमाते।
सब सत्य का कर त्याग पंथ हैं नए चलाते।
कोई बने ब्रह्म समाज, ब्रह्म से संगत बताते।
निराकार में संगत रूपी विक्षेप हैं लाते।

इस पुस्तक की रचना भी पं० कृपाराम शर्मा की अनूठी ही है। शायरी के शौक वाले तो उसे अमृत का घूंट ही समझेंगे। हम उसकी छन्द रचना की बात कहने में अपने को अधिकारी नहीं पाते, पर उसके भाव गजब के गहरे हैं। वैराग्य पर उसमें दुनियां को नीरस ही बनाकर छोड़ा है, अद्वैत खड्ग से तो लेखक सब मत-मतान्तरों से जंग करने को तैयार खड़ा दीखता है, पर ईश्वर भक्ति और ईश्वर की जुदाई को भी गाता है। माया तृष्णा के बादलों को तो लेखक वेगवाद मारुत-सा बली बनकर बिखेर फेंकता है। "अहं ब्रह्मास्मि, द्वितीयो नास्ति" का पुट तो पद-पद में भरा पड़ा है। कनक कामिनी को आजाद दुश्मन कहकर, सोने का पिंजड़ा या पंछी का कैदखाना ही मानता है। जंगल और प्रकृति के निकट के एकान्तवास को ही शान्ति धाम मानता है।

पहला विद्यालय घर पर ही

विरक्त कृपाराम का वैराग्य पाठकों ने थोड़ा पढ़ लिया। अब किंचित इस निर्भय त्यागी के बनवास की संकट कथा भी बीच में सुन लीजिए। कथा कहिये या आत्म कथा। क्योंकि कृपाराम शर्मा ने घर लौटने पर अपने घरवालों को जो थोड़े बहुत वृत्तान्त कह सुनाये थे उनमें से हमने पं० जयराम जी शर्मा और उनके छोटे भ्राता स्वामी ब्रह्मानन्द जी से ही नोट किये थे। अर्थात् इन दोनों महानुभावों ने स्वयं पं० कृपाराम शर्मा से सुने थे।

घर पर एक संस्कृत पाठशाला उन्हीं दिनों पं० कृपाराम जी खोल चुके थे। उसको पं० जयराम शर्मा की प्रेरणा से आर्य समाज जगरावां को सौंपने वाले भी थे। परन्तु उसकी हस्तांतरित विधि सम्पन्न करने के पूर्व ही घर से निकल पड़े थे और सीधे काश्मीर-जम्मू की तरफ चले गए। इसके पश्चात् उन पर कहां-कहां कैसी-कैसी बीती इसका विस्तृत विवरण अब दुष्प्राप्य है। जो थोड़ा मिल सका उसमें से कुछ निम्नलिखित है।

कश्मीर के बनराज और भालू से भेंट : झेलम स्रोत में स्नान

सन्यास के प्रथम भ्रमण में जब पहाड़ों पर इनकी चढ़ाई जारी थी तब झेलम के आदि स्रोत की खोज करते हुए वहां पहुंच ही तो गए। वहां पहुंचकर आपने उसके झरने में स्नान किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि आप एक दम ठण्डे पड़ गए। जैसे-तैसे शरीर में सावधानता आई। वहां से घूमते-फिरते रावलपिण्डी पहुंचे। बुभुक्षा ने सताया तब आप वहां एक सेब के बाग में पहुंचे। वहां सेब वाले से सेब लिए। उससे पूछा कितने पैसे दूं। उसने केवल दो चार पैसे मांगे। इन्होंने उसे झट कुछ अधिक पैसे दे दिए। ये सेब खाते रहे माली ने फिर और सेब दे दिये। इन्होंने कुछ खाये कुछ फेंक दिये और आगे पंजाब के मैदानों को चल पड़े।

विरक्त नित्यानन्द आजाद काश्मीर के अरण्यों में घूम रहे थे तब एक जगह १४ मील वाला सुरक्षित मार्ग छोड़कर लोगों से छोटा मार्ग पूछा। पथिकों ने ६ मील वाला छोटा मार्ग बतला तो दिया पर साथ ही खबरदार कर दिया कि इसमें शेर भालू रहते हैं, पर कृपाराम जी को दीर्घसूत्रता से तो जन्म-जात दुश्मनी थी। झट ६ मील वाला मार्ग पकड़ लिया, मस्त चाल से घूमते-घामते ६ मील वाले मार्ग से चल पड़े। निदान खतरे का सामना होना ही था।

सायंकाल निकट आ रहा था, जो हिंसक प्राणियों के घूमने का समय होता है, एक जगह शेर मिल ही तो गया। इन्होंने उसे दूर से देखा पर इन पर ईश्वर की अनुग्रह की छाया मौजूद थी जिसके कारण शेर अपनी चाल चलता हुआ जिधर जा रहा था उधर को चला गया और ये सुरक्षित बच गए। अब आगे और भयंकरता उपस्थित हुई कि चलते-चलते अन्धेरा हो गया और आप मार्ग से भटक गए। कहीं के कहीं जा निकले। विवश होकर एक जगह एक चट्टान पर सो गए, इन्हें कुछ पता न था कि ये किसका शयनागार है। समीप ही एक रीछ सो रहा था। ईश्वर की छत्रछाया इन पर यहां भी छाई हुई थी कि वहां पर कुछ आदमी आ निकले, आदमियों की आहट से वह रीछ जाग खड़ा हुआ और उन आगन्तुकों पर दौड़ा। तब उस शोर-शार से आपकी निद्रा भंग हुई और फिर उन्हीं राहगीरों के साथ हो लिए। यों उस आपत्ति से भी साफ बच गए। इसके पश्चात् घूमते-फिरते फिर मैदानी नगरों की तरफ मुड़ पड़े। रावलपिण्डी, पेशावर आदि क्षेत्रों से घूमते हुए उस दीनानगर में पहुंचे थे जहां वे पादरियों से बहस करते समय अपने घर वालों के द्वारा पकड़े जाकर घर ले जाये गए थे।

अमृतसर की "सच्ची दुकान"

पं० कृपाराम शर्मा प्रथम सन्यास के बाद जब घर पर ले आये गए थे, तब उनका पड़ा व्यसन ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का मनन ही था। परन्तु बड़ों की आज्ञा को मान देने के कारण उन्हें फिर भी व्यापार आदि के कार्य में थोड़ा बहुत लगना ही पड़ता था। उनके अनुज पं० कर्ताराम जी को उनके साथ लगाकर अमृतसर में एक अच्छी बजाजे की दुकान खुलवा दी गई थी। कृपाराम जी थे तो निराले ही, इन्होंने दुकान के खुलने का समय विभाग और कुछ नियम बनाये और दोनों भ्राता उस पर काम करने लगे।

पेशावर सदर की "वैदिक धर्म प्रचारक सोसायटी" के प्रबन्धकर्ता श्री हरि कृष्ण जी वर्मा बजाज ने श्री स्वामी दर्शनानन्द जी के स्वर्गवास पर उर्दू में एक ३२ पृष्ठ की छोटी-सी पुस्तक लिखी है। उन्होंने स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज से सत्य का व्रत, कैसे पालन किया जाए यह सीख लिया। अपनी पुस्तक के पृष्ठ चार पर वे लिखते हैं कि आपकी दुकान बजाजे की थी। जहां खरीददारों के अलावा धर्म सम्बन्धी विचार करने वाले कसरत से आते थे और शंका समाधान करते थे।

पं० जी की दुकान अमृतसर में माल दरवाजे से नजदीक थी जो बडी कामयाबी से चलती थी। पं० जी ने अपने कारोबार की कामयाबी का जिक्र मुझे यों सुनाया था कि पहले हमारी दुकान रौनक पर न थी जिसका कारण यह था कि काम मेरे नियमपूर्वक न था। जब दुकान का काम मेरे सुपुर्द हुआ तो नियम बनाये गए और छोटे-बड़े सबके लिए समान भाव रक्खा गया तथा हमने सस्ते भाव पर कपड़ा बेचना शुरू कर दिया। जो कश्मीरा बाजार में दो रुपये गज बिकता था, वह हमारी दुकान पर मामूली मुनाफा रखकर डेढ़ रुपया गज फरोख्त किया गया तो लोग हैरान रह गये और खरीदार हमारे सस्ते भाव को जानकर शौक से आने लगे। सुबह दुकान खुलते ही ग्राहकों की भीड़ लग जाती थी और शाम को मुश्किल से खरीदारों को उठाकर दुकान के किवाड़ बन्द करते थे। इस मिसाल से स्वामी जी ने मुझको नसीहत दी कि तुम भी

ऐसा करो, सो आज्ञा का पालन फौरन किया गया जिससे मुझे अच्छी कामयाबी हुई और झूंठ बोलने से मन में पहले जो अशान्ति रहती थी वह सत्य को ग्रहण करने से दूर हो गई।

महर्षि प्रयाण पर दानपुण्य

ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों के पूर्ण अभ्यास के पश्चात् इन्होंने पंजाब के नगरों के उत्सवादि पर व्याख्यान देना, ट्रेक्ट लिखना आदि जारी कर दिया था। अपने निज के व्यय से सर्वत्र प्रचारार्थ एक उपदेशक महाशय को भी नियुक्त किया था। प्रचार की धुन में बड़े से बड़े हर्ष प्रसंग और बड़े से बड़ा शोक प्रसंग इन्हें विचलित नहीं कर पाता था। सन् १८८३ ई० में महर्षि दयानन्द के निर्वाण पद प्राप्ति पर इन्होंने एक तात्कालिक पुण्यदान ही किया, शोकग्रस्त न होकर प्रचार मग्न ही रहे। इस शोक में भी इन्हें यह आवेश आया कि इन्होंने ऋषि दयानन्द कृत कुछ ग्रन्थों की सैकड़ों प्रतियां सुपात्रों में वितरित कीं।

आर्य जगत् की आर्य सामाजिक गतिविधियों को यह सदा ऋषि के ही दृष्टिकोण से निहारते थे। प्रारम्भ के इनके ट्रेक्टों में 'मूर्खता'' नाम का ट्रेक्ट पाठकजन पढ़ेंगे, तब उन्हें इस बात का स्पष्ट आभास हो जाएगा कि आर्य सामाजिक जगत् को उन्होंने पथ भ्रष्ट होने से बचाने के लिए सन् १८८७ ई० के निकट ही कितना सावधान किया था जिस पथभ्रष्टता का उल्लेख और चर्चा आज तक चारों ओर चली आ रही है। अब इसके पश्चात् हम उनके चतुर्दिकव्यापी अभियान का उपक्रम करेंगे जो कि उनके काशी के निवास काल से दिग्विजयी उल्लास से प्रारम्भ होगा।

परिचयोल्लास—समाप्त

दिग्विजय-उल्लास

ओ३म्। आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवानो अस्तु।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेममेनां मनसि प्रविष्टाम्॥ (अथर्व० १९।४।२)

हे ईश्वर, दिव्यगुणों वाली तथा उत्तम ऐश्वर्य की जननी हृदय स्थित उस संकल्प शक्ति को मैं सम्मुख रखता हूं। चित्त की माता वह मेरे सहसा आह्वान पर मेरे सन्नहित रहे। मेरी इच्छा मेरे एकांकी संकल्प पर आश्रित हो, जो संकीर्ण न हो, विशाल हो।

काशीवास और शर्तें : वैदिक पिता जी की स्वर्ण मूर्तियां—पुरोहितार्पण

पितामह पं० दौलतराम जी के स्वर्गवास के पश्चात् काशी की उनकी सम्पत्ति और 'क्षेत्र' आदि दान पुण्य के कार्यों की व्यवस्था के लिए कृपाराम को कार्य सम्भालने के लिए कहा गया। कृपाराम जी प्रत्येक मामले में शर्त लगाना न चूकते थे, इन्होंने प्रेस और पत्र जारी करने की शर्त लगा दी। पिता जी को एक दम स्वतन्त्र रहना पसन्द था, पिताजी ने कड़े तौर पर कह दिया कि काशी के प्रबन्धक बनने के लिए तुम्हें अपना पूरा गृहस्थाश्रम साथ रखना होगा। पुत्र महाराज को यह आज्ञा स्वीकार करनी पड़ी।

काशी निवास काल भी इनका परम्परागत अच्छे ठाठ का था। घर की ओर से नौकर चाकर, घोड़ा गाड़ी इत्यादि सभी सुविधायें जारी थीं अब पं० कृपाराम शर्मा का ध्यान ऋषि दयानन्द के पद चिन्हों पर गया और ऋषि कृत ग्रन्थों का प्रकाशन, पत्र निकालना, शास्त्रार्थ करना, व्याख्यान देना और एक संस्कृत विद्यालय चलाना इन्होंने अपने संकल्प में लिया।

पुत्र महाराज क्यों इतने तर्कशील उत्पन्न हुए? इसलिए कि धर्मिष्ठ पिता जी भी परख की

कसौटो हाथ में रखते ही थे, उनका मस्तिष्क भी विद्या वरिष्ठों का सा था। अपने आत्मज कृपाराम जी को ऋषि दयानन्द के ग्रंथों में गहरी अभिरुचि देख कर इनका हृदय सच्चाई की प्रेरणा पहले ही पा चुका था, पर विद्वद्वर को उन ग्रन्थों को निज कसौटी पर कसने का अवसर न मिल सका था। सन १८८१ ई० के लगभग अमृतसर में एक बार ऋषि दयानन्द के उपदेश श्रवण का अलभ्य लाभ इन्हें मतावलम्बी भ्रान्त लोगों ने न लेने दिया था। 'दयानन्द नास्तिक हैं'' इत्यादि कह कर इन्हें उनके व्याख्यान सुनने को जाने से रोक दिया था। यह दयानन्द वाणी के जिज्ञासु तो पहले से ही थे। अब उनके ग्रन्थों को खूब जांचने का दृढ़ विचार हो गया।

यह अपने पिता दौलतराम के पास पहले भी काशी प्रायः जाया करते थे। अब एक बार जब आप काशी पहुंचे तब उन्होंने ऐशियाटिक सोसायटी आदि के निरुक्त शतपथ, वेद संहिताएं आदि प्राचीन शास्त्रादि ४०० रुपए में मंगवा कर सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थों के प्रमाणादि को उनके साथ कसौटी पर रख कर खूब जांचा, और फिर कहा कि स्वामी दयानन्द का सब कथन सच्चा है।

तब कृपाराम शर्मा पिता जी से कहने लगे कि जब ऋषि दयानन्द का कथन सच्चा है तो यह मूर्ति पूजा आदि बातें अपने आप झूठी साबित होती हैं। तो आप कृपा करके इन स्वर्ण की रामकृष्ण की मूर्तियों का पूजन छोड़ दीजिए, इन्हें ऐसा ही रख दीजिए।

अब पं० राम प्रताप जी अवाक् हो गए। निदान पुत्र के विमर्श से उन्होंने अपनी सोने की मूर्तियां अपने कुल पुरोहित को अर्पित कर दीं।

आर्ष ग्रन्थ और साप्ताहिक का प्रकाशन

काशी में आपने चैत्र बदी पूर्णिमा सम्वत् १९४५ वि० के दिन आसन जमाया था। पहले प्रेस जारी करने के लिए बांकीपुर, पटना (बिहार) जाकर वहां से "दि इण्डियन ट्रेड एडवरटाइजर" प्रेस खरीद लिया और इसी को १० दिसम्बर सन् १८८९ ई० में बनारस ले आये, इसी प्रेस का नामकरण होकर "तिमिरनाशक मुद्रणालय" हुआ। काशी में आर्ष ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए जो अपना "तिमिरनाशक मुद्रणालय" आपने चलाया था, वहां से "तिमिरनाशक साप्ताहिक" भी जारी किया, जिसका प्रथमांक ३० जून १८८९ ई० को प्रकाशित हुआ था। इसके मुख पृष्ठ पर आदर्श वचन (मोटो) निम्न दोहा था—

"स्वारथ भारत में बसो जीवन भयो अकाज।
खोयो कुमति विलास ने, धर्म जीव और लाज॥"

इसी प्रेस में आपके छपाए मूल सामवेद संहिता का उत्तरार्चिक हमारे पास अब भी मौजूद है, जिस पर मुद्रक का नाम रामप्रतापात्मज कृपाराम शर्मा है।

काशी पर पंचानन का अभियान

स्वनामधन्य पं० कृपाराम शर्मा के ऐसे क्षण ढूंढे नहीं मिलते जिनमें वे कभी निष्क्रिय या शिथिल बैठे। हां ऋग्वेद की ऋचा के अनुसार वहीं देखने को मिलता है कि वह वाजिनीवती पावक सरस्वती माता के वरद पुत्र कर्मभूमि में सदा अतिद्रुत गति से ही अवतरित होते थे। काशी में इस पुरुषसिंह की प्रगतियों को हम अध्यात्म पंचानन केसरी का सर्वतोमुखी आक्रमण ही कह सकते हैं। काशी में आसन जमाने के बाद वहां आप अपनी निम्न पंचविध प्रवृत्तियों के प्रवर्तक के विशेषणों से विभूषित थे (१) षड् दर्शनों के मन्थन-कर्ता (२) आर्य गुरुकुलों के आदि स्रोत (३) आर्य जगत में आर्ष ग्रन्थों के प्रथम प्रकाशक (४) काशी के

विश्वरस्य विद्वानों के विजेता और (५) निर्धन विद्यार्थियों के आश्रयदाता अर्थात् माता-पिता और विद्यादाता। इसके अतिरिक्त आपको काशी में गुण्डों का भी उपकार बनना पड़ा। अर्थलोलुप पुस्तक विक्रेताओं से आप ठगे गये। लाजरस कम्पनी के मालिक यूरोपियन महोदय से तगड़ा मुकदमा भी लड़ना पड़ा। इन विविध विषयों का वर्णन पहले आप महाविद्यालय ज्वालापुर के महान स्तम्भ साहित्याचार्य श्री पं० पद्मसिंह जी शर्मा की परिमार्जित लेखनी में पढ़िए जो उन्होंने कलकत्ते के प्रसिद्ध मासिक "विशाल भारत" के सन् १६२६ ई० (वर्ष २, खण्ड २, संख्या ३, पूर्णांक २१) में "ज्वालापुर महाविद्यालय" शीर्षक के लेख में अंकित किए हैं।

स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा के शब्द

"(ज्वालापुर) महाविद्यालय के संस्थापक श्रीमान स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती का पहला नाम पं० कृपाराम शर्मा था। आपका जन्म सुप्रसिद्ध देश भक्त श्री लाला लाजपतराय जी के जगरावां नगर के एक सम्पन्न ब्राह्मण कुल में हुआ था। काशी में आपके पिता जी का एक क्षेत्र (अन्नसत्र) था। पं० कृपाराम जी काशी पहुंचे और बहुत वर्षों तक पढ़ते-पढ़ाते रहे। बुद्धि बड़ी विलक्षण थी। दर्शनशास्त्र में बचपन से ही रुचि थी। सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री मनीषानन्द जी पर आपकी विशेष भक्ति थी। दर्शनों का पाठ इन्हीं के यहां सुनते थे। सुनते-सुनते दर्शनशास्त्र के बहुश्रुत विद्वान् हो गए। अपने खर्च से एक संस्कृत पाठशाला भी आपने काशी में बहुत दिनों चलाई। उस समय आर्य सामाजिक विद्यार्थियों को काशी के पण्डित पढ़ाते न थे। उनके पीने रहने सहने का भी वहां कुछ प्रबन्ध न था। आर्य विद्यार्थी आत्मगोपन करके रहते थे या मारे-मारे खाने फिरते थे। इस दिक्कत को दूर करने के लिए ही पं० कृपाराम जी ने अपनी पृथक् पाठशाला खोली थी। यह पाठशाला उन दिनों आर्य विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयुक्त सिद्ध हुई। अनेक आर्य विद्वानों ने विद्यार्थी दशा में उक्त पाठशाला से सहायता और शिक्षा पाई। पाठशाला में कई पण्डित पढ़ाते थे जिनमें गुरुवर श्री पं० काशीनाथ जी महाराज मुख्य थे। आचार्य पं० श्री गंगादत्त जी, श्री पं० भीमसेन जी शर्मा, पं० नारायणदत्त जी सिद्ध थे। सब उन दिनों काशी में पढ़ते थे। वर्तमान गुरुकुल प्रणाली के संस्थापक आचार्य और अध्यापक वहां तैयार हो रहे थे। पं० कृपाराम जी शर्मा ने पाठशाला के अतिरिक्त काशी में एक "तिमिर-नाशक प्रेस" भी खोला था। अष्टाध्यायी की वृत्ति "काशिका और महाभाष्य" दुर्लभ थे, मूल्य बहुत अधिक था। "काशिका" सिर्फ लाजरस प्रेस की छपी मिलती थी, जिसका मूल्य १५ रु० था। महाभाष्य भी ३० रु० से कम नहीं मिलता था। पं० कृपाराम जी ने अपने प्रेस में छपवाकर "काशिका" ३ रु० में और महाभाष्य १० रु० में दिया। असमर्थ विद्यार्थियों को सैकड़ों पुस्तकें मुफ्त भी दीं। जो विद्यार्थी या पण्डित काशिका या महाभाष्य मांगने या मोल लेने पहुंचा वह निराश नहीं लौटा—कोई महाभाष्य खरीदने पहुंचा और कहा सिर्फ २ रु० है। अच्छा ले जाओ। काशी के कई धूर्त बुकसेलरों ने विद्यार्थियों के द्वारा सैकड़ों पुस्तकें मंगा-मंगाकर जमा कर लीं और पीछे संस्करण समाप्त हो जाने पर दुगने-तिगुने मूल्य में बेचीं। "काशिका" के लिए लाजरस कम्पनी ने कापी राइट का मुकदमा भी चलाया था जिसमें पं० कृपाराम जी के हजारों रुपये खर्च हुए, पर अन्त में वे जीत गये। "काशिका" का उद्धार हो गया। लाजरस कम्पनी को भी काशिका का मूल्य घटाना पड़ा। पं० कृपाराम जी का संस्कृत साहित्य पर और विद्यार्थियों पर यह एक उल्लेख योग्य उपकार था। पण्डित कृपाराम जी ने अपने हिस्से की सारी सम्पत्ति इन्हीं कामों में ही काशी में रहते ही खर्च कर डाली। संस्कृत के प्रचार में ही सर्वस्व समर्पित कर दिया। जी भर के घर फूंक तमाशा देख लिया। समाज में ऐसे धुन के धनी आदमी कहां हैं? पण्डित कृपाराम को पाठशाला और प्रेस खोलने का एक व्यसन था जो जीवन भर रहा।

काशी में षड्दर्शनों का अध्ययन

काशी आर्य समाज की स्थापना, घर बैठे गंगा,

शिष्य को अंतेवासी बनाने गुरुवर घर आए।

कृपाराम शर्मा के लघु भ्राता पं० मुनीश्वर जी शर्मा ने लाहौर से प्रकाशित "बलिदान" मासिक के अंक ७, भाग १०, अक्टूबर सन् १९३४ ई० के अंक में लिखा है कि :—

"उस समय काशी के भारत जीवन, धर्म जीवन और मित्र विलास नामक पत्र जनता को भ्रान्ति में डालकर अपना उल्लू सीधा कर रहे थे अतः उनके वैदिक धर्म पर आक्षेपों के प्रतिपादन के लिए इस पत्र की बहुत आवश्यकता थी, सो इससे आर्य जनता का बहुत उपकार हुआ। आपने काशी में आर्य समाज का झण्डा गाड़ दिया। एक पाठशाला भी अपने निज के व्यय से चलाई जिसमें पं० काशीनाथ जैसे प्रसिद्ध विद्वानों ने आर्य छात्रों को संस्कृत साहित्य से सर्वथा सुभूषित किया। पं० सीताराम शास्त्री, पं० लालमणि प्रभृति अनेक पण्डित यहां से विद्यामंडित होकर उपदेशक पद पर आरूढ़ हुए।

काशी आर्य समाज में एक डाक्टर महोदय प्रविष्ट हो गए थे, धन-धान्य से तो वे परिपूर्ण थे, परन्तु आचार-विचार नितान्त योरुपीयजनों के सदृश थे। धनेच्छुक आर्यों के बहुमत से वे प्रधान पदारूढ़ हुए तब इन्होंने आर्य समाज काशी से परित्याग पत्र दे दिया। एक सभा में एक बंगदेशीय राजा ने आपके गले में पुष्पहार डाल दिया। कई व्यक्तियों ने यह समझ लिया कि कृपाराम ने आर्य समाज छोड़ दिया। यह बात किसी ने भी भाई जगतसिंह जी अधिष्ठता छात्राश्रम डी० ए० वी० विद्यालय लाहौर को बतलाई। उस समय भाई जी ने कहा कि "यह बात नितान्त गप्प है, कृपाराम की अंगुली क्यों न काट दी जावे वे आर्य समाज को नहीं छोड़ेंगे।" यह वाक्य भाई जी ने मुझ लेखक (मुनी० श०) के सामने कहे थे।...इसी वर्ष इन्होंने पं० परमेश्वरीदत्त जी से सिद्धान्त कौमुदी (व्याकरण की प्रसिद्ध पुस्तक) भी पढ़ी।

यह पुस्तक व्यवसाय तो करते ही थे, इनके यहां सदा विद्वानों तथा छात्रों का ही आगमन होता था। वे पुस्तक लेने आते थे तब उनसे युक्ति-युक्त शास्त्रार्थ भी छिड़ जाता था। इस कार्य के यह बहुत रसिक थे। छात्रों तथा विद्वानों के घरों पर भी जाकर शास्त्रार्थ आरम्भ कर देते थे। एक दिन यह पं० हरिहरनाथ (स्वामी मनीषानन्द) के एक शिष्य से कथनोपकथन कर रहे थे कि पण्डित जी आ निकले और इनकी तर्क परिपूर्ण बातें सुनकर विस्मित होकर पूछा—"कृपाराम जी आपने कोई शास्त्र भी पढ़ा है? इन्होंने कहा "महाराज, मैं तो निरक्षर भट्टाचार्य हूं, मैंने तो कोई भी शास्त्र नहीं पढ़ा है।" पं० जी ने कहा कि—जब आपने कोई शास्त्र नहीं पढ़ा तब आपकी इतनी तर्कनाशक्ति है, यदि कोई शास्त्र पढ़ लेते तो न जाने कैसे विद्वान् होते? इन्होंने कहा कि "यदि कोई पढ़ने वाला हो तो मैं पढ़ने को कटिबद्ध हूं।" पं० जी ने कहा—"हम पढ़ाने के लिए बद्धपरिकर हैं।" यह सुन इनके हर्ष की सीमा न रही और तुरन्त पढ़ना आरम्भ कर न्याय आदि साढ़े चार दर्शन पढ़ लिए। वेदान्त अधूरा और मीमांसा पूरा शेष रह गया। गुरु भी अनुपम थे और शिष्य भी अद्वितीय। पं० जी के अध्यापन से इनकी योग्यता को चार चान्द लग गए। अब यह ऐसे दार्शनिक बन गए कि जनता ने इनकी अकाट्य युक्तियों को देखकर इनको "तार्किक-शिरोमणि" की उपाधि दे दी।

महामहोपाध्याय पं० शिवकुमार शास्त्री से शास्त्रार्थ

क्षिति-मण्डल के एक मात्र संस्कृतज्ञ महामहोपाध्याय पण्डित शिवकुमार शास्त्री जी ने एक बार

सनातन धर्म सभा के समारोह में कहा कि स्वामी दयानन्द ने देव शब्द का अर्थ विद्वान् किया है वह ठीक नहीं। देवता और ही होते हैं······श्रोतृ-वृन्द में यह भी थे, इन्होंने कहा—"स्वामी दयानन्द ने अर्थ नितान्त ठीक किया है।" फलतः देव शब्द पर शास्त्रार्थ के लिए तिथि निश्चित हुई। यह एक दिन रात्रि के समय देव शब्द के लिए विविध ग्रन्थों से प्रमाण ढूंढ़ रहे थे। अकस्मात् पण्डित हरिनाथ जी उधर आ निकले, उनकी दृष्टि इन पर पड़ी परन्तु इन्होंने नहीं देखा। प्रातःकाल उन्हें बुलाकर पूछा। पता लगने पर कहा कि "देव शब्द के विद्वान् अर्थ में एक नहीं १५० प्रमाण प्रस्तुत हैं।" यह कहकर सब प्रमाण इन्हें लिखवा दिये, इससे शास्त्रार्थ में इनकी पूर्ण विजय प्राप्त हुई। यह इनका पहला महत्वपूर्ण शास्त्रार्थ था।

पं० जयराम शर्मा कथित शास्त्रार्थ वृत्त

(तीन घन्टे लगातार व्याख्यान)

स्व० श्री पं० जयराम शर्मा जी ने पण्डित शिवकुमार जी के साथ हुए इस शास्त्रार्थ के संस्मरण मुझे इस प्रकार नोट कराये थे "कृपाराम पं० शिवकुमार जी से मिलने गये तब एक बड़ी पण्डित सभा में से पं० शिवकुमार ने अपनी ऊंची गद्दी के पास बुलाया और अपने पास अपनी आधी गद्दी पर बिठाल कर कहा-देखो समाज में क्षत्रिय, वैश्य आवें सो तो ठीक हैं क्योंकि उन्हें उन्नत होना है—ब्राह्मण होना है या बनना है। तुम तो ब्राह्मण ही हो, तुम अधिक क्या बनोगे ? कृपाराम जी ने वहां बैठे-बैठे ही कहा "आज्ञा हो तो कुछ कहूं"। स्वीकारी मिलने पर बोले "देखिये, यहां पांच सौ विद्वान् तो नीचे बैठे हैं और आप ऊंचे पर बैठे हैं और मुझे भी इन पांच सौ से ऊपर बैठने को मिला, यही प्रत्यक्ष लाभ या उन्नत होना है"। दूसरे प्रश्न पर पण्डित शिवकुमार जी ने कृपाराम से कहा—स्वामी दयानन्द जी का देव का अर्थ इन्द्र आदि अप्रत्यक्ष है। कृपाराम ने उत्तर दिया "प्रत्यक्ष अर्थ ही ठीक है क्योंकि इतने विद्वानों में आप सबसे ऊंचे बैठे हैं यही प्रत्यक्ष अर्थ है। इन पांच सौ में से किसने इन्द्रादि को प्रत्यक्ष देखा है। इन पांच सौ विद्वानों को मेरा चेलेंज है कि इस विषय पर कल तीन बजे "ज्ञानव्यापी" पर (विश्वनाथ मन्दिर के पास) में व्याख्यान दूंगा। जिसे शास्त्रार्थ करना हो आ जावे"। इस चेलेंज के आधार पर पं० कृपाराम शर्मा नियत स्थान पर तीन के बजाय दो बजे ही पहुंच गये और तुरन्त व्याख्यान प्रारम्भ कर दिया जो पांच बजे तक लगातार तीन घन्टे तक चलता रहा, इस घटना चक्र से काशी में आपकी धाक सदा के लिए बैठ गई।

इस शास्त्रार्थ में स्वामी मनीषानन्द (पं० हरनाथ जी शास्त्री) ने "विद्वांसो हि देवाः" इस विषय पर इन्हें सौ प्रमाण ढूंढ दिये, इससे पूर्व जब कि यह रात भर जागकर शास्त्रों में से तीन प्रमाण ढूंढ पाये थे।

पं० कृपाराम शर्मा बिना शर्त के कोई काम पकड़ते न थे। जब पं० हरनाथ शास्त्री (स्वामी मनीषानन्द जी) गंगा बनकर इनके घर पधारे, तब इन्होंने गुरुवर से प्रतिज्ञा ली कि "मैं जितना पढ़ूं उतना पढ़ाईये। गुरुवर इससे भी बढ़ चढ़कर थे, उन्होंने कहा "जितना पढ़ाऊं उतना याद करना होगा"। इससे पहले प० हरनाथ जी के पुत्र या शिष्य कृपाराम जी से प्रसंगोपात बात कर बैठते थे। उन विद्यार्थियों ने पं० हरनाथ शास्त्री जी से कृपाराम जी की चर्चा की थी तब उन्हें कृपाराम से मिलने की इच्छा हुई थी। परिणाम में गुरु शिष्य मिल बैठे।"

बिरादरी का बहिष्कार उलटा गले पड़ा

कृपाराम शर्मा के छोटे भाई कर्तारान जी शर्मा की ससुराल नवांशहर (जिला-जालन्धर) में थी। उनकी ससुराल के बुरखा कपूरथला राज्य के दीवानादि पदों पर रहे थे, उनमें पं० बन्नामल के पुत्र पं०

अछरूलाल जी इन्हीं दिनों काशी में पहुंचे और एक चलती हुई भरी सभा में कृपाराम शर्मा को उन्होंने समझाया कि "तुम सनातन प्रथा मत छोड़ो, आर्यापन छोड़ो इत्यादि।" इन्होंने उनको उत्तर दिया कि "आपने अपने पिता का सनातन "बकरा खाना" धर्म क्यों छोड़ दिया ?" इस उत्तर से निरुत्तर होने पर इस बात पर अष्टवंश सारस्वत ब्राह्मणों ने उसी सभा में हो हल्ला मचाया कि "कृपाराम को बिरादरी से निकाल दो"। संयोगवश इनके दूर के सम्बन्धी मामा प० मथुरादास जी भी वहां उपस्थित थे। वे इन "बिरादरी बाइकाट" सिद्धांत वाले ब्राह्मणों का और विशेष कर अछरूलाल जी का खूब विरोध करने लगे और साथ ही साथ कृपाराम के पक्ष का समर्थन करने लगे।

काशी में पहला उत्पात

काशी में जब पं० कृपाराम शर्मा ने प्रचार आरम्भ कर दिया तो समझिये कि वह छोटा साहस नहीं था। काशी और पूना संस्कृत विद्या के केन्द्र तो प्रसिद्ध रहे हो हैं पर इन दोनों में उपद्रवी गुण्डों की कमी नहीं रही है। काशी गुण्डों के कारण बहुत बदनाम रही है। वहाँ एक गुण्डों का सरदार बटुकराम दलाल प्रसिद्ध था, अपने चेले चांटों से परोक्ष रूप में आर्य समाज के प्रचार में उपद्रव कराना उसका एक खास काम था। व्याख्यान दाता को वह हतोत्साह कर देता था, पण्डित कृपाराम शर्मा तो बुद्धि के खिलाड़ी थे। उन्होंने बटुकराम को अपनी नीति से मेल जोल में ले लिया था। इस नीति से वह इनकी सहानुभूति का पात्र और इनका कृपज्ञ बन गया था। फिर भला उपद्रव कराने वाला अन्य कोई खड़ा ही कैसे हो सकता था। यों मार्ग निष्कण्टक होने से ये अपनी प्रचार प्रवृत्तियों में खूब सफल होते रहे।

काव्यतीर्थ जी वैदिक कैसे बने

आर्य जगत के प्रथम वैदिक विद्वान श्री पं० शिवशंकर जी शर्मा काव्यतीर्थ वेद विद्याओं पर विशद प्रकाश डालने वाले आर्य जगत् में शिरोमणि विद्वान हुए हैं। वे छान्दोग्य बृहदारण्यक के बृहत भाष्यकर्ता और "वैदिक इतिहासार्थ निर्णय" आदि अनेक ग्रन्थों के लेखक कर के प्रसिद्ध थे। वे अपने ग्रन्थ "त्रिदेवी निर्णय" में पं० कृपाराम शर्मा (स्व० दर्शनानन्द जी सरस्वती) की काशी को उसकी वैदिक नाद की प्रशस्ति अपने "त्रिदेव निर्णय ग्रन्थ में विद्वानों का समागम" शीर्षक में यों लिखते हैं—सन् १८८९ ई० की बात है इसी समय काशी के मान मन्दिर में एक पण्डित सभा होने लगी, जिसका उद्देश्य केवल स्वामी दयानन्द प्रणीत सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों का खण्डन करना था। इसमें शिवकुमार शास्त्री प्रधान थे और काशी के सब ही प्रसिद्ध पण्डित इकट्ठे होते थे। इस सभा ने मेरा बड़ा उपकार किया। काशी के निखिल दिग्गज पण्डितों की योग्यता एक साथ ही प्रतीत हो गई। मुझे निश्चय हो गया कि इनमें से कोई भी वेद नहीं जानता। यह घटना देख अत्यन्त शोक हुआ कि हाय काशी जैसे धाम में जब वेद विद्या नहीं रही, तब अब भारतवर्ष की किस भूमि पर होगी, क्या ईश्वर की यही इच्छा है कि अपनी वाणी को इस अपवित्र भूमि से उठा ले। इस समय पं० कृपाराम जी जो आजकल स्वामी दर्शनानन्द कहलाते हैं, काशी जी में थे। पं० जी उस सभा के सब प्रश्नों का उत्तर दिया करते थे। इनकी सभा अलग हुआ करती थी। मुझे बड़ा आश्चर्य होता था कि काशी के पंडित लोग कृपाराम जी की युक्तियों का भी खण्डन नहीं कर सकते थे। मेरा न कृपाराम से न आर्य समाज से कोई सम्बन्ध था। मैं कभी आर्य समाज में नहीं गया। परन्तु कृपाराम जी का उत्तर सुनने के लिए केवल कभी-कभी वहां जाया करता था जहां वे व्याख्यान दिया करते थे। काशी की प्रसिद्ध जितनी सभायें होती थीं, प्रायः मैं सबमें जाया करता था"।

स्वामी मनीषानन्दजी क्या थे ?

श्रद्धेय स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी महाराज का और मेरा निज अनुभव

श्री पं० कृपाराम शर्मा के निर्देश से आर्य समाज मन्दिर बदायूं में मेरे पूज्य पिता पं० रामप्रसाद जी शर्मा संस्कृत पाठशाला चला रहे थे जिसका प्रबन्ध आर्य समाज बदायूं के हाथ में था। अनेक विद्यार्थियों में से मैं भी एक था। अष्टाध्यायी युग आर्य समाज का एक आर्ष प्रणाली का युग करके प्रसिद्ध था। कुछ इधर-उधर के संस्कारों से प्रभावित होकर मैंने सन् १६०१ ई० के मध्य पर अपने पूज्य पिताजी से जैसे-तैसे काशी जाने की स्वीकृति प्राप्त कर ली थी। मेरे साथ एक सम्बन्धी भ्राता रामदयालु जी भी मेरे साथ ही कई वर्षों से पढ़ रहे थे; हम लोगों को आधी अष्टाध्यायी कंठस्थ थी। हम काशी पहुंचे और वहां काशी के पुराने आर्य समाज मन्दिर (चितगंज या जगतगंज) में निवास करने लगे और एक अच्छे अष्टाध्यायी गुरु की तलाश में घूमे। काशी का सामान्य वातावरण गली-कूंचों में संस्कृत का ही था। हमें मर्मज्ञ लोगों ने बताया कि तुम स्वामी मनीषानन्द जी के पास पहुंचो। एक दो दिन बाद हम टेढ़ी नीम उनकी गद्दी पर पहुंचे। देखते क्या हैं कि एक छोटे कमरे में एक काषायधारी दंडी चटाई पर कुछ और आसन बिछाये लेटे हुए हैं। हम दोनों ने साष्टांग प्रणाम किया। बैठने की आज्ञा मिलने पर बैठ गये। वे बोले "क्या चाहते हो?" हमने कहा "महाराज, अष्टाध्यायी की प्रणाली से व्याकरण पढ़ने की इच्छा है। "वह बोले" अच्छा, पढ़ायेंगे, पर तुम को हमारे मठ की कुछ सेवा करनी होगी।" हमने कहा "महाराज, आज्ञा दीजिये।" वे बोले "देखो, हमारा यह सब स्थान धोना और शुद्ध करना होगा और कुछ घड़े गंगाजल लाना होगा और प्रतिदिन मेरे शरीर को सिर से तलवे तक मालिश करनी होगी। "हम दोनों ने कहा कि "महाराज, जैसी आज्ञा।" हम दोनों चले आये। वहाँ हमारे एक और हितैषी अधेड़ सन्यासी स्वामी सच्चिदानन्द जी मिल गये थे। वे आर्य सामाजिक विचार के थे। परन्तु उन दिनों सब ही आर्य सामाजिक विद्यार्थी अपने को प्रकट नहीं करते थे; स्वामी सच्चिदानन्द जी ने हमें समझा बुझा कर संस्कृत क्विंस कालिज में श्री पं० भवानीदत्त दीक्षित की गद्दी के शिष्य वर्ग में प्रविष्ट करा दिया। वे स्वयं भी उनसे पढ़ते थे; दीक्षित जी आर्य सामाजिक विद्यार्थियों के लिए हृदय में गुप्त सहानुभूति रखते थे अतः फिर हम वहीं तीन वर्ष पढ़ते और परीक्षाएं देते रहे। स्वामी मनीषानन्द जी (गृहस्थाश्रम के पं० हरनाथ जी शास्त्री) की धाक पं० शिवकुमार शास्त्री से किंचित भी कम न थी। उनके नाम लेते ही उस समय के उद्‌भट विद्वान् भी स्तब्ध हो जाते थे। यह हम अपनी आंखों से देखें और कानों से सुने अनुभव लिख रहे हैं। स्वामी मनीषानन्द जी छोटे और हलके शरीर के पुरुष और वर्ण, तेजस्वी व्यक्ति थे। उनमें एक विचित्र आकर्षण था हम फिर भी उनके दर्शनों को कभी-कभी जाते रहे थे।

श्रद्धेय स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने जमना नगर (पंजाब) से हमारी प्रार्थना पर हमें स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज के कुछ संस्मरण भेजे हैं उनमें से हम यथा प्रकरण उन्हें उद्‌धृत कर रहे हैं। यही संस्मरण ही उन्होंने महाविद्यालय ज्वालापुर के लिए अभी जनवरी सन् १९५ में भेजे हैं। उनके शब्द यह हैं—

गुरु भक्ति

"काशी में टेढ़ी नीम के मुहल्ले में श्री स्वामी मनीषानन्द जी महाराज का मठ था। इस मठ में व्याकरण, साहित्य, दर्शनादि विविध विषयों के विद्यार्थी पढ़ने से पहले वह पढ़ने का अधिकारी है या नहीं इस बात की परीक्षा भली-भांति ले लिया करते थे।

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि ।।
असूयकायानृजवे मा ब्रूया वीर्यवती यथा स्याम् ।।

विद्यार्थी की परीक्षा प्रक्रिया का अनुसरण उनके यहां भली भांति किया जाता था ।

एक दिन एक शास्त्री जी वेदान्त दर्शन पढ़ने के लिए उनके पास चले गए। उन्होंने कहा कि हमारे यहां विद्याध्ययन के लिए अधिकारी परीक्षा अवश्य देनी होती है । यहां से दो मिल पर अस्सीघाट है, वहां से एक घड़ा जल शुद्ध भर के नित्य ले आया करें । शास्त्री जी ने कहा—मेरे पास बहुत विद्यार्थी पढ़ते हैं और कोई भी एक घड़ा जल भर लाया करेगा । स्वामी जी ने कहा—तो विद्यार्थी ही पाठ भी पढ़ जाया करेंगे । अतः आप अधिकारी परीक्षा में अनुत्तीर्ण हैं ।

एक दिन पण्डित कृपाराम जी जिनका भविष्य नाम स्वामी दर्शनानन्द जी होने वाला था, उनकी दर्शन पढ़ने की बड़ी उत्कट इच्छा थी । स्वामी मनीषानन्द जी महाराज दर्शनों के बड़े विद्वान् हैं यह जान कर टेढ़ी नीम के मठ में विद्याध्ययन के लिए पहुंच गए । दर्शन शास्त्र के अध्ययन की स्वामी मनीशानन्द जी से भिक्षा मांगी । स्वामी जी ने कहा भाई, अध्ययन के लिए अधिकारी परीक्षा देनी आवश्यक होती है । कृपाराम जी रेशमी कपड़े पहने हुए थे, अमीर घराने का जन्म था । स्वामी जी ने उनके अनुरूप ही उनके सामनेअधिकारी परीक्षा का विषय छेड़ दिया । स्वामी जी ने कहा कि देखो दर्शन पढ़ने की इच्छा से आये हो, हमारे मठ में नित्य प्रति गोबर और मिट्टी का गारा बना कर लेपन देना पड़ता है । क्या तुम यह कर सकोगे ? कृपाराम जी ने बिना पूछे ही आज्ञा के साथ ही कार्य प्रारम्भ कर दिया । नल पर गये पानी भर लाये, और मुहल्ले में जाकर जहाँ कहीं गोबर व मिट्टी मिली गारे की सामग्री उठा लाए । गारा बनाया और मकान लीपना आरम्भ कर दिया, उन्होंने यह नहीं देखा कि मेरे रेशमी कपड़े गारे से भर जावेंगे । उनके कपड़ों को गारा लग भी गया, परन्तु उन्होंने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया । यह घटना मैंने अपनी आंखों से नहीं देखी, जब काशी विद्याध्ययन के लिए गया था तभी बातचीत में वहां के पढ़ने-लिखने वालों से सुनी थी ।"

सन् १९४२ ई० में मैं अपने पुत्र देवेन्द्र शर्मा के पास बम्बई सान्ताक्रूज कुछ मास ठहरा हुआ था वहीं ज्यूहू मार्ग पर कोने की एक कोठी में पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी विराजमान थे । मैं इन दिनों भी स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज का जीवन साहित्य संचित कर रहा था । तब मैं स्वामी आत्मानन्द जी महाराज से २-३ बार मिला था । तब उन्होंने पण्डित कृपाराम द्वारा टेढ़ी नीम के इस मठ के गोमय से लेपन करने की वार्ता इसी रूप में मुझ से कही थी ।

सहस्त्र रुपये अकस्मात् दान में

काशी संघर्ष काल में आपकी हलचलें वहीं सीमित न थीं । अपने मुद्रणालय के कार्य से कभी बाहर जाना पड़ता था और आर्य समाज के उत्सवादि के निमित्त भी पंजाब और विशेषकर उत्तर प्रदेश में वैदिक दुन्दुभि का नाद सुनाने जाते ही थे । तब पंजाब में "दयानन्द एग्लोवैदिक स्कूलों" का कुछ प्रचलन हो चुका था । पर उत्तर प्रदेश जागृत न था । आपकी संस्कृत भाषा उद्धार की धुन तो प्रसिद्ध है पर सामान्य आर्यजन कम जानते हैं कि उन दिनों वे आर्य समाज द्वारा इंगलिश स्कूलों की आवश्यकता को भी अनुभव करते थे । १० जुलाई सन् १८९२ ई० को कानपुर आर्य समाज के किसी उत्सवादि प्रसंग पर आपने "नौजवानो उठो" बहुत जोशीला ट्रैक्ट वहीं लिखा था और इसी विषय पर आर्य समाज मन्दिर कानपुर में एक व्याख्यान दिया था ।यही सप्ताह थे कि जिन दिनों में आपने अपनी काशी के कार्यों की सब व्यवस्था समेट ली थी । उन दिनों

अंग्रेजी की चकाचौंध से देश के नवयुवक प्रवाहित होकर अधिकतर मिशन स्कूलों में प्रविष्ट हो जाते थे और परिणाम स्वरूप वे ईसाइयत से रंग जाते थे, इत्यादि खतरों को पं० कृपाराम जी शर्मा पैनी निगाह से देखते थे। "नौ जवानो उठो" ट्रेक्ट इसी खतरे की घण्टी है।

सन् १८९२ ई० में आप लखनऊ के प्रसिद्ध नवलकिशोर प्रेस को घर से एक सहस्र रुपया लेकर कागज मोल लेने गये थे। प्रसंगवश वहां के आर्य सज्जनों ने डी० ए० वी० कालेज के लिए एक महत्ती सभा में २६ दिसम्बर १८८९ ई० को आपसे अपील करवाई। आपकी पुर जोर अपील बड़ी सफल रही। दानी कर्ण से यह बात कैसे बनती कि और से दान करवायें और स्वयं मौन रहें। इन्होंने अपनी जेब का वह एक सहस्र रुपया उसी अपील में दान दे दिया। लखनऊ के धनाढ्य पुरुष इस दान को सुन कर चकित रह गए। आप लखनऊ की उस डी० ए० वी० कमेटी के एक सभासद् के रूप में भी निर्वाचित हुए। काशी का आर्थिक ढांचा व्यवस्थित कैसे रह सकता था? हां वैदिक सिद्धान्त प्रचार की उनकी लगन में एक क्षण को भी शैथिल्य आ सका था।

इससे दो दिन पूर्व आपका व्याख्यान आर्य समाज बरेली के वार्षिकोत्सव पर भी हुआ था। ३१ दिसम्बर १८८९ ई० को आप मेरठ पधारे वहां "वेदों की शिक्षा के पूर्ण क्रियात्मक रूप" विषय पर जोरदार व्याख्यान हुआ। जिसमें वैदिक विद्वान्, उपदेशक तैयार करने पर बल दिया गया था। यह समाचार मेरठ "आर्य समाज मासिक पत्र" में भी मुद्रित हुआ था। इसके पश्चात् इसी सन् में आप दानापुर चले गए थे और वहां के "आर्यावर्त" का कुछ दिनों सम्पादन भी किया। इसके पश्चात् आप "वैदिक यंत्रालय" प्रयाग में अक्तूबर के द्वितीय सप्ताह में कुछ दिन ठहरे।

फिर जन्म भूमि पंजाब और उत्तर प्रदेश में

सन् १८९३ ई० का आपका लगभग सब समय पंजाब के नगरों के प्रचार में बीतता रहा। फिर १८९४ ई० में अपनी जन्म भूमि जगरावां में आपने "वेद प्रचारक प्रेस" जारी कर दिया और हिन्दी भाषा में वहीं से एक वेद प्रचारक मासिक तथा एक साप्ताहिक पत्र भारत उद्धार विषयक भी प्रकट किया। इन पत्रों पर बंगवासी सत् धर्म प्रचारक और आर्य धर्म रक्षक लाहौर इत्यादि कई पत्रों ने इसके लेखों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इन्हीं दिनों में आपने अपने चार पांच ट्रेक्ट और संध्या का मुफ्त वितरण भी किया। जालन्धर, अमृतसर, लाहौर आदि पंजाब के सभी छोटे बड़े नगरों में बड़े-बड़े उत्सवों पर प्राचीन आर्ष शास्त्रों की शिक्षा देते रहे। तथा १८७५ ई० के जनवरी मास में बच्छोवाली लाहौर में एक बुक डिपो भी जारी किया।

कुलपति श्री पं० नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ लिखित वृत्त

सम्वत् १९९२ वि० में 'राव जी महाराज" कुछ सप्ताह आगरे में कार्यवश ठहरे हुए थे। तब मेरे निवेदन पर उन्होंने स्वामी दर्शनानन्द जी का जीवन सम्बन्धी एक विस्तृत लेख मुझे देने का अनुग्रह किया था। उस लेख के अंशों को मैंने इस ग्रन्थ में यथा प्रकरण निबद्ध किया है। उनमें से एक अंश निम्न प्रकार है:—

"सबसे पूर्व पं० कृपाराम जी के दर्शन हमको लाहौर बच्छोवाली समाज महोत्सव में हुए थे। यह है सन् १८९४ ई० नवम्बर महीने की बात। हमने उक्त महोत्सव में उनके दो व्याख्यान सुने थे। इनकी आदत थी कि मेज के एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूमते जाते थे और व्याख्यान देते थे। लोग बड़े चाव से इनके भाषणों को सुनते दिखाई देते थे। उस समय हम दक्षिण से ताजे ही आये थे और हमको हिन्दी का

परिपक्व ज्ञान भी नहीं था। इसलिए केवल इतना ही समझ सके कि वे किसी गहन शास्त्रीय विषय का प्रतिपादन कर रहे हैं। १८६४ से १८६८ तक हम लाहौर में ही रहे, इसलिए वहां बच्छोवाली समाज में प्रायः इनके व्याख्यानों को सुनने का अवसर अवसर मिलता रहता था। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के जो महारथी गिने जाते थे—उनमें पं० कृपाराम शर्मा, पं० लेखराम शर्मा, पं० आर्य मुनि, इनका नाम प्रमुखता से सुनाई पड़ता था—सारे पंजाब में इनके व्याख्यान प्रचार, शास्त्रार्थ की धूम और गूंज सुनाई पड़ती थी। उस समय लाहौर से निकलने वाली अंग्रेजी आर्य पत्रिका में इनके कार्य का ब्यौरा प्रति सप्ताह छपता रहता था। आर्य पत्रिका प्रतिनिधि सभा पंजाब की मुख्य पत्रिका थी।

वह आर्य समाज का प्रारम्भिक युग था। इसलिए पौराणिकों, मुसलमानों और ईसाईयों के साथ शास्त्रार्थ की धूमधाम का समय था। कोई दिन, कोई सप्ताह, कोई पक्ष और कोई मास खाली नहीं जाता था, जब कभी कहीं शास्त्रार्थ न होता था तो पौराणिकों के साथ पं० कृपाराम शर्मा और पं० आर्य मुनि भिड़ते थे और यवनों से निपट लेते थे पं० लेखराम जी। वैसे पं० कृपाराम शर्मा प्रत्येक विषय में प्रत्येक मतावलम्बियों से भिड़ने में समर्थ थे। उनकी युक्ति प्रबल थी। ये विधर्मियों के आक्षेपों का ऐसा अकाट्य उत्तर देते थे कि विपक्षी निरुत्तर हो जाते थे। उनका व्याख्यान विविध शास्त्र प्रमाणान्वित और तर्क परिपूर्ण रहता था। इसलिए उनकी प्रख्याति सबसे अधिक और सबसे शीघ्र हुई।"

उत्तर प्रदेश में कृपाराम युग

पं० कृपाराम शर्मा के उत्तर प्रदेश सम्बन्धी आरम्भिक "वेद प्रचार" के सम्बन्ध में बिजनौर मंडल आर्य समाज के इतिहास में विविध वृत्त छपे हैं। इस इतिहास को निबद्ध करके हलदौर निवासी विद्वद्वर्य स्व० पं० भवानी प्रसाद जी ने बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है। वे लिखते हैं—पं० कृपाराम शर्मा जी का बिजनौर जिले में सम्वत् १९५२-५३ (सन् १८९५-९६ ई०) में शुभागमन हुआ था। अर्थात् इस काल से ही उन्होंने जिला बिजनौर में धर्म प्रचार प्रयत्न आरम्भ किया था। इस काल में कई पूर्व स्थापित आर्य समाजों का पुनरुज्जीवन हुआ और कई प्रमुख स्थानों में नवीन आर्य समाजें स्थापित हुईं। इसलिए इस द्वितीय प्रचार आन्दोलन का नाम कृपाराम प्रयत्न काल है।

सम्वत् १९५२-५३ वि० (सन् १८९५-१८९६ ई०) में इस जिले में आर्य समाज के प्रसिद्ध प्रचारक और तार्किक प्रतिवादि भयकर पंजाब के जगरावां वास्तव्य, पं० कृपाराम जी का पवित्र पदार्पण हुआ और आर्य धर्म प्रचार का प्रयत्न, प्रबलता से प्रारम्भ हुआ। जिसको इस इतिहास में कृपाराम प्रयत्न काल का नाम दिया गया है। इसी काल में ज्येष्ठ सुदी प्रतिपदा सम्वत् १९५० वि० (जून सन् १८९७ ई०) को प्रशंसित पण्डित कृपाराम जी द्वारा नजीबाबाद आर्य समाज का पुनरुज्जीवन होकर उसकी पुनः स्थापना हुई सं० १९५५ वि० से पूर्व धामपुर में कोई नियमित आर्य समाज न था, हां, लाला रूपचन्द और मु० बहालचन्द चौकीदार आदि कई दृढ़ आर्य अवश्य थे। धामपुर में आर्य समाज की नियमित स्थापना कृपाराम प्रयत्न काल में सं० १९५५ वि० (सन् १८९८ ई०) में प्रशंसित कृपाराम जी के प्रयत्न से बाजार में लाला गुलाबराय जी के बालाखाने पर हुई थी।" लाला गुलाबराय जी के उक्त बालाखाने पर ही धामपुर आर्य समाज की ओर से एक पाठशाला भी प्रशंसित पं० कृपाराम जी शर्मा की प्रेरणा से स्थापित हुई थी और ऊमरी निवासी पण्डित वासुदेव जी उसमें अध्यापक रखे गए थे।

"वेद प्रचार" योजना का आविष्कर्ता : आर्य जगत का दूसरा मंसर

श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा यू० पी० ने पहिले पहल डी. ए. वी. कालेज खोलने का निश्चय किया था, तदनुसार श्री पं० तुलसीराम जी स्वामी ने नहटौर, मथुरा, रुड़की आदि स्थानों में अपीलें कीं और

रुपया एकत्र किया, रजिस्ट्री नहीं हुई थी। फिर समाजों में वेद प्रचार का जोश उभरा, उस समय श्री पूज्य पं० जी ने सलाह दी कि कालेज कमेटी ही में उपदेशक कक्षाएं बढ़ा ली जावें। पृथक्-पृथक् फण्ड न खोलिए। समाजों में जोश भरा था पं० कृपाराम जी और लाला मुंशीराम जी आदि ने जिले मुरादाबाद में मोहफिक वेद प्रचार कमेटी बनवाई और बरेली में वेद-प्रचार के अस्वीकृत प्रस्ताव को अगले वर्ष प्रतिनिधि सभा को स्वीकार करना पड़ा। कुछ दिनों पीछे गुरुकुल की लहर समाजों में चली, उस समय भी श्री पं० तुलसीराम जी स्वामी ने सलाह दी कि डी. ए. वी. कालेज में ही परिवर्तन करके ब्रह्मचारी आश्रम या उपदेशक पाठशाला बना दी जावे, नया काम न आरम्भ हो। परन्तु समाजों में तो जोश भरा जा रहा था कि "बनें ऋषि मुनि सन्तान क्या अंग्रेजी पढ़ जाने से।"

ऐसे भजनों की ध्वनि गूंज रही थी और इधर सिकन्दराबाद जिला बुलन्दशहर में श्री स्वामी दर्शनानन्द जी ने स्वर्गवासी प० गंगासहाय जी (देवटा निवासी) को उपदेश कर स्टेशन के पास गुरुकुलार्थ मकान बना हुआ लेकर गुरुकुल खोल दिया। पं० मुरारीलाल शर्मा की स्पीचों ने समाजों में स्टोम भर दी, स्वामी दर्शनानन्द जी के भोगवादी सिद्धान्त की ज्वाला और लाला मुन्शीराम जी के पीले रंग की उमंग की पवन पंजाब से चलती हुई उसे द्विगुणित कर रही थी। समाजों में जोश था, मु० नारायण प्रसाद जी के २० सहस्त्र रुपए का भिक्षार्थ भ्रमण का भारी बल था, श्री पं० भगवानदीन जी के पवित्र व्रत ने ब्रह्म शक्ति का संचार कर दिया था, तब काशी के महाधिवेशन में आर्य दल ने श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा को विवश किया कि वह गुरुकुल खोले। गुरुकुल खोलना पास हुआ, वही गुरुकुल १६-१२-१९११ ई० को वृन्दावन आ गया।

सन् १८९७ ई० में मुरादाबाद से अपना वैदिक धर्म प्रेस स्थापित करके वहां से आपने ट्रेक्टमाला के अतिरिक्त अपना एक साप्ताहिक पत्र भी चालू किया था, जिसका नाम "वैदिक धर्म" था। उस पत्र के पहले अंक के मुख पृष्ठ पर आपके यह आदर्श वचन (मोटो) अंकित थे।

ख्वाहिशे दुनियां नहीं, वैदिक धरम मंजूर है।
धर्म पर देने को जां, यह दूसरा मसूर है।

इस पत्र में आप मौलवी महमूदहसन आदि अनेक मतावलम्बियों के आक्षेपों का मुंहतोड़ जवाब लिखते थे। इसी सन् में अक्टूबर मास से यह वैदिक धर्म हिन्दी में भी प्रसिद्ध होने लगा इसी मास में वहां के वार्षिकोत्सव पर उत्तर प्रदेश के वेद-प्रचार फण्ड के लिए आपने अपील भी की, जिस पर पर्याप्त धन इकट्ठा हुआ। इन दिनों आप अपने प्रकाशित साहित्य पर अपने को पंजाब और उत्तर प्रदेश की आर्य प्रतिनिधि सभाओं का आनरेरी उपदेशक लिखा करते थे। लुधियाना आर्य समाज की ओर से आप प्रतिनिधि सभासद् भी थे। इन्हीं दिनों सन् १८९८ ई० के आरम्भ में प्रसिद्ध पं० रामचन्द्र वेदान्ती से देहली में इनका शास्त्रार्थ हुआ और जब देहली में भी प्रेस जमाने की बुनियाद पड़ गई तथा वहां भी लाला आत्माराम के बाग में प्रेस जारी कर दिया। चावड़ी बाजार में एक अपनी बुक डिपो भी चालू कर दो। पं० रामचन्द्र वेदान्ती से फिर शीघ्र ही अतरौली (जिला—अलीगढ़) में भी शास्त्रार्थ किया। मुरादाबाद में रहते हुए वहां के आर्य भास्कर प्रेस और आर्य मित्र साप्ताहिक में भी आप एक बड़े सहायक बन कर रहे।

प्रतिदिन एक ट्रेक्ट दान का प्रण

सन् १८९६ ई० की बात है कि आप मेरठ में अपने मान्य चाचा पं० जयराम जी शर्मा के पास ठहरे हुए थे। आपका शरीर कहीं रहता था, मस्तिष्क कहीं। आपने सायंकाल के समय एक तेल से भरी लालटेन घर से लेकर ऊपर की छत पर आसन जमाया और लिखना प्रारम्भ किया।

"या निशा सर्वभूतानाम् तस्यां जाग्रति संयमी" की उक्ति चरितार्थ हुई कि लिखते-लिखते उषा की अरुणता चमकने लगी, फिर भी आपको होश नहीं कि अब कितनी घटिकाओं का समय हो चुका है। आप तल्लीन होकर कागज कलम से युद्धरत थे कि लालटेन का तेल जवाब दे गया और कागज मांगने के बाद आपने समझा कि ओहो, प्रात:काल हो गया, नित्यकर्म से निबटने के पश्चात् अपने चाचा जो से बोले "मैंने आज से प्रतिदिन एक ट्रैक्ट लिखने की प्रतिज्ञा की है।"

मुरादाबाद में गुंडों का आक्रमण

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी (पं० कर्ताराम जी शर्मा) ने मुझे बताया कि आर्य पथिक पं० लेखराम जी के बलिदान वाले मास में पं० कृपाराम शर्मा मुरादाबाद के अपने प्रेस में आठ भागात्मक "अकायद इस्लाम पर अकली नजर" ट्रैक्टमाला लिख रहे थे, तभी प्रेस में वहां के कुछ मुसलमान गुंडे हमला करने की बदनीयती से घुस आये और आक्रमण की घात में ही थे कि निर्भीक कृपाराम ने अकेले ही उनकी ओर अपना "कागज कटर" लेकर उन पर अभियान बोल दिया, यह दृश्य देख गुंडे रफूचक्कर हो गये।

दिल्ली में आर्य महाशय से मुकदमा लगा

सन् १८९८ ई० में देहली से जब आप "वैदिक धर्म" पत्र निकाल रहे थे तभी लाहौर में महाशय राधा कृष्ण जी मेहता ने "सत्यार्थ प्रकाश" का उर्दू रूपान्तर प्रकाशित किया था। पं० कृपाराम शर्मा ने इस उर्दू अनुवाद की अपने पत्र में सिद्धान्त की अनभिज्ञता सम्बन्धी बातों की आलोचनात्मक अच्छी खबर ले डाली। मेहता महाशय ने रुष्ट होकर लाहौर चीफ कोर्ट के वकील लाला दुर्गादास जी बी० ए० के द्वारा इन्हें नोटिस दिया। इन्होंने इस नोटिस का तगड़ा उत्तर भी "वैदिक धर्म" में ही प्रकाशित किया। मेहता महाशय को यों "ओ३म् शान्ति" प्राप्त हुई। देहली में आपका प्रकाशन कार्य ज्यों का त्यों उत्साह पूर्ण चलता रहा और बाहर भी प्रचारार्थ जाना जारी रहा।

बृहत आर्य सिद्धान्त प्रकाशन, आर्य पथिक के समर्पण
प्राचीन-शिक्षा प्रणाली का प्रथम प्रयोग

देहली निवासकाल में ही आप सिकन्दराबाद (जि० बुलन्दशहर) प्रचारार्थ जाते थे। इन्हीं दिनों के आपके पुरुषार्थ के परिणाम-स्वरूप सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर) में आर्य समाज के प्रचार की भारी चहल-पहल मच गई थी। उत्सवों से पश्चिम के अनेक जिले खिचे चले जाते थे। स्व० पं० मुरारीलाल शर्मा इनके जोशीले सहवासी और सहकारी बन गये थे। इन्हीं दिनों इन शर्मा जी की भजनपचीसी छपी थी, फिर भजनपचासा छपा था जिसके "गणपति का रूप बनाय के पीली मिट्टी पुजवाई" इत्यादि भजन गांव-गांव फैल गये थे और कृषक बन्धु खेत काटते-चराते इन भजनों को गाते थे। पं० गंगासहाय जो देवटा वाले श्री पं० कृपाराम शर्मा पर फिदा थे। उदारचेता भूदानी प० गंगासहायजी शर्मा की भूमि में कर्मवीर कृपाराम ने सिकन्दराबाद गुरुकुल खोल दिया। यही दिन था जब कि भारतवर्ष में प्राचीन शिक्षा प्रणाली का प्रथम सूत्र-पात हुआ और भारतीयों को गुरुकुल, ऋषिकुल, ब्रह्मचर्याश्रम चलाना सीखने को मिला। उनके नि:शुल्क शिक्षा देने वाले गुरुकुलों का उल्लेख हम "गुरुकुल उल्लास" प्रकरण में करेंगे।

देहली में अप्रैल १८९९ ई० से आपने एक और मासिक वैदिक मैगजीन निकालना आरम्भ कर दिया और साथ ही साथ अब तक के लिखे हुए अपने प्रारम्भिक लगभग डेढ़ दर्जन ट्रैक्टों का मुद्रण और उनके नवीन संस्करण निकालते रहे। इन्हीं गत दो वर्षों में आपने "सत्यव्रती महानन्द" और "धर्मवीर" नामक दो बड़े धार्मिक उपन्यास भी लिखे थे, जिन्हें आपने स्वर्गीय प० लेखराम जी के समर्पण किया था।

कुछ ट्रैक्टों के संग्रह को आपने "आर्य सिद्धान्त मुक्तावली" नाम से भी प्रकाशित किया था। इन्हीं दिनों आपने धार्मिक कहानियों की "कथा पच्चीसी" भी प्रकाशित की थी। बड़े ग्रन्थों में भगवद् गीता और मनुस्मृति के उर्दू भाष्य भी प्रकाशित किये थे। आर्य पथिक पं० लेखराम जी के समर्पण में "सत्यव्रती नाविल" के अन्त में आपके श्रद्धा पुष्प निम्न प्रकार हैं :—

"मुसन्निफ इस किताब को अपने परम मित्र, धर्मवीर, १९ वीं सदी के सच्चे बलिदानी पं० लेखराम साहब आर्य मुसाफिर जो कि ६ मार्च १८९७ ई० को बवक्त ६ बजे शाम के शहर लाहौर में एक जालिम मुसलमान के हाथ से धर्म पर बलिदान हुए उनके नाम पर समर्पण करता है।"

—कृपाराम शर्मा, एडीटर "वैदिक धर्म"

इन्हीं दिनों आपने "क्षमा पर क्षमा चन्द्रोदय" नामक उपान्यास भी लिखा था।

चंडाल चौकड़ी

सन् १८९३ ई० के सन्निकट पंजाब के आर्य सामाजिकों की दलबन्दी उग्ररूप धारण कर रही थी। आर्य समाज की ओर से "विरजानन्द यन्त्रालय" लाहौर में "हिन्दी में" लवपुर आर्य समाज का "षोडश-वर्षीय वृत्तान्त" नाम की रिपोर्ट १८९४ ई० में छपी है, और १९०३ ई० तक का एक छोटा इतिहास कालेज पार्टी का लिखा हुआ उर्दू में छपा है, जिसके लेखक कदाचित् राधाकृष्ण मेहता हैं, जिन्होंने पं० कृपाराम जी पर दिल्ली में मुकदमा चलाना चाहा था। लाहौर आर्य समाज की सभा में इनका ही प्रस्ताव ऐसा था जिसमें आर्य सभासद् बनने में मांसभक्षण कोई आपत्तिजनक बात न मानी जाय। इन दोनों पुस्तकों से दल-बन्दी का स्पष्ट आभास मिलता है, इस द्वन्द्व युद्ध के सम्बन्ध में पं० कृपाराम शर्मा ने अपने "चंडाल-चौकड़ी" नामक उपन्यास में एक चित्र खींच दिया है जिसमें "राजनीतिक ऐंग्लोवैदिक कलह प्रियों की" कड़ी खबर ली है।

तेली के बैल की चाल को भी गति-प्रगति समझने वाले और भौतिक-पूजा में लगे रहने वाले कुछ आर्य सामाजिक पुरुषों ने भी पं० कृपाराम शर्मा को मुस्तकिल काम न करने वाले विशेषण लगाये हैं पर अयोध्या और इन्द्रप्रस्थ के चक्रवर्ती सम्राटों को और उनके साम्राज्यों को भी स्थायी न मानने वाले पं० कृपाराम शर्मा ऐसी हलकी आलोचनाओं को बे-समझों की सूझ-समझ कर टाल देते थे, वेद प्रचार की धुन उन्हें एक जगह चैन से नहीं रहने देती थी। आप जिन स्थानों में अपनी आवश्यकता और उपस्थिति को अनुभव करते वे झट वहीं डेरा जमा देते थे। इस समय सन् १९०० ई० के आरम्भ में आप जगरावां भी गये, और वहां "हम निर्बल क्यों हैं" नामक ट्रैक्ट लिखा, जो श्री मुनीश्वर शर्मा ने अपने मुनीश्वर प्रेस में तुरन्त छापा दिया।

आगरा में साहित्य-प्रकाशन और प्रचार

आगरे में आप पहले मौलवियों और पादरियों से लंगड़े शास्त्रार्थ कर चुके थे। अब आपको आगरे में ही अपना प्रचार-केन्द्र बनाने की आवश्यकता अनुभव हुई, अतएव आपने यहां आसन जमा दिया और विविध प्रवृत्तियां आरम्भ कर दीं। इनके अनुज स्व० श्री पं० मुनीश्वर जी शर्मा ने जो छोटा सा ट्रैक्ट "खुलासा राहते दीदार" अर्थात् "दर्शनानन्द चरित्र-सार", स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज के जीवनकाल में ही सन् १९१२ ई० में अमृतसर से प्रकाशित किया है, जो केवल आठ पृष्ठ का छोटा सा ट्रैक्ट है। उसमें आप लिखते हैं कि "२७ फरवरी को आप बमुकाम आगरा अपने मतबा बनाम "मखजनुल इलूम" में मुकीम थे। इस मतबे से एक अखबार तालिबेइल्म साप्ताहिक प्रकाशित होता था। जिसके कुछ ही अंक छपे थे।...

..."आप आर्य समाज मन्दिर आगरा में विराजमान थे। दस अगस्त को आपका समाज में व्याख्यान हुआ और इन दिनों समाज में विभिन्न विषयों पर आपके अनेक आकर्षक व्याख्यान होते रहे। "आर्यावर्त" पत्र में इन व्याख्यानों की प्रशंसा छपती रही। समाज मन्दिर में आपने एक नाइट स्कूल भी जारी किया। जहां सन्ध्या और व्याख्यान देने की कला सिखाने की विज्ञप्ति दी और यह भी प्रकाशित किया कि यदि कोई साहब "न्याय दर्शन तथा सांख्य दर्शन" पढ़ना चाहते हैं तो वह भी इस नाइट स्कूल में पढ़ सकते हैं। यह वृत्तान्त आर्यावर्त के एक सितम्बर के अंक में भी मुद्रित हुआ था। यहां से आपने अपने भाई मुनीश्वर शर्मा को जगरावां पत्र लिखा कि यहां दो टाइप प्रेस मौजूद हैं लिखो तो भेज दिये जावें पर मुनीश्वर जी प्रेस कार्य बन्द कर चुके थे।

आगरा आर्य समाज के अर्द्धशताब्दी वृत्तान्त के पृष्ठ ३२-३३ पर निम्न वृत्तान्त छपा है "सन् १८९९-१९०० ई० में प्रसिद्ध दार्शनिक श्री पं० कृपाराम शर्मा जगरानवी आगरा में रहे और यहां से अपनी ट्रैक्टमाला निकाल रहे थे। समाज की ओर से उनका व्याख्यान "मुक्ति की अनित्यता" पर ८ मार्च १९०० ई० को कराया गया और जनता को शंका समाधान का भी अवसर दिया गया। जिसका सिक्का सारे नगर पर जम गया। उसके बाद श्री पं० कृपाराम शर्मा ने इस प्रसंग की एक ट्रैक्टमाला छपवानी आरम्भ कर दी जिसमें तीन ट्रैक्ट इस प्रकार हैं—पाठक इन्हें अवश्य पढ़ें।

१—क्या धर्म सभा शास्त्रार्थ कर सकती है ? ट्रैक्ट नं० ५८, (२) धर्म सभा से प्रश्न (६४ प्रश्न) ट्रैक्ट नं० ६० (३) "बेसमझों के स्वामी दयानन्द पर झूठे इल्जाम" (ट्रैक्ट नं० ६२) आपने नं० ६० के ट्रैक्ट में अधोलिखित एक नोट दिया था—

"चूंकि आजकल हिन्दू सभा के गिरी यानी पहाड़, सागर यानी समुद्र वगैरा महोपदेशक स्वामी दयानन्द को गाली देकर अक्सर कोलाहल मचाया करते हैं, इसलिए यह सात ट्रैक्ट जिनमें हिन्दू धर्म सभा से ५०० प्रश्न हैं, नम्बर वार अर्पण किए जायेंगे। हिन्दुओं को चाहिए कि अपने पहाड़ और समुद्र और अपने उपदेशकों से उनके जवाब दिलवावें, नहीं तो झूठे वायदों से बाज आवें।"

वैदिक आश्रम की स्थापना

इसी पुस्तक के पृष्ठ ५३-५४ पर निम्न लेख अंकित हैं—"जगरानवी पं० कृपाराम शर्मा १९०० ई० में आगरा रहे थे। तभी उन्होंने वैदिक आश्रम खोलने का प्रस्ताव सुझाया। उसके आधार पर आर्य समाज की ओर से 'अंग्रेजी तालीमयाफताओं में वैदिक धर्म के प्रचार का आसान तरीका" इस नाम की ८ पृष्ठ की एक बढ़िया स्कीम निकाली गई। यह ट्रैक्ट श्री बाबा रामप्रसाद जी उपप्रधान और श्री कृपाशंकर जी एम० ए० प्राज्ञ मन्त्री के हस्ताक्षरों से विक्टोरिया प्रेस में छपा कर प्रकाशित किया गया। समाज ने इस बहुमूल्य प्रस्ताव का सहर्ष स्वागत किया और उसी वर्ष के वार्षिकोत्सव पर अपील की गई। परिणाम स्वरूप १९०० ई० में विद्यार्थियों के निवास के लिए वैदिक आश्रम जारी हो गया। कालेजों आदि में पढ़ने वाले लगभग १५ विद्यार्थी उसमें निवास करते रहे।" दुःख है कि प्रबन्ध की असुविधा से यह आश्रम ९ वर्ष बाद १९०१ ई० के अक्तूबर मास से बन्द कर दिया। वस्तुतः यह कम खर्च वाला नवीन नुसखा था। क्या ही अच्छा हो कि हम इस कार्य के सम्पादन में पुनः सन्नद्ध और समर्थ हों।"

हरिद्वार पर दृष्टि और आर्य धर्म सभा की रूपरेखा

आर्य जगत पं० कृपाराम शर्मा की एक कल्पना से अनभिज्ञ सा ही है कि जो उन्होंने सन् १८९८ ई० में आगरे के अमान प्रेस से उर्दू में प्रकाशित की थी। यह "आर्य धर्म सभा" नाम से एक छोटा सा

प्रस्तावरूप ट्रैक्ट है और पत्र व्यवहार के लिए पं० कृपाराम जी ने अपना पता आर्य समाज आगरा हींग की मण्डी छपवाया था। ट्रैक्ट का वितरण विशेषत: हरिद्वार से ही किया गया था और हरिद्वार को ही योजना का केन्द्र माना था। ट्रैक्ट आर्य विद्वानों की सम्मति के आदान प्रदान और विचार विमर्श के लिए था। इसमें योजना के विवरण के साथ सभा के लिए दस नियम भी थे, इसे हम अविकल रूप में कभी फिर प्रकाशित करेंगे। पाठक इसके पढ़ने से समझ सकेंगे कि हमारे चरित्र नायक का दृष्टिकोण पहले से ही कितना ऊंचा था। ऋतुओं की सामग्री, ऋतुओं के भिन्न यज्ञ, वैदिक संस्कारों की पद्धति, विद्यार्थियों को कृष्ण सुदामा की तरह अर्थात् राजा और रंक की सन्तान को समान स्तर से रक्षित और शिक्षित बनाना, फण्डों को न खोलना उसके बजाय सनातन दान प्रणाली को सात्विक बनाना आदि बातों का मार्ग प्रदर्शन है और भारतवर्ष का एक मात्र आर्य प्रवृत्तियों का केन्द्र हरिद्वार को लक्षित किया गया है।

अपने स्थापित गुरुकुल सिकन्द्राबाद से भी आपने "गुरुकुल समाचार" पत्र जारी कर दिया था और बिजनौर के इर्द-गिर्द भी आप समाजों की स्थापना और शास्त्रार्थों में लगे हुए थे। आगरे का अपना केन्द्र भी इन्होंने विघटित कर दिया था और समाज मन्दिर के पुस्तकालय इनके रचित कई सहस्र ट्रैक्ट बिकते हमने अपनी आंखों से देखे हैं। इनके कई प्रेस काफी समय तक आगरा आर्य समाज मन्दिर में पड़े रहे थे। उधर बुलन्दशहर में भी आपका प्रकाशन चल रहा था। इसी काल में स्वामी दयानन्द के शिष्य करके प्रसिद्ध इटावा निवासी पं० भीमसेन जी शर्मा आर्य सिद्धान्तों से कुछ डगमग हो चले थे। पं० कृपाराम शर्मा को यह बात बेहद खटकी और मानों कि इनसे ही सामना करने की अब तैयारी में लग गए थे। पाठक इसे अब यथा प्रसंग पढ़ेंगे।

स्वामी दर्शनानन्द जी की कार्य माला में आगरे का बड़ा महत्व है, यहां हम उस समाज के इतिहास से कुछ पंक्तियां उद्धृत करते हैं। "आगरे के शास्त्रार्थ" शीर्षक बड़े मार्के की घटना वाला ही है। अन्य प्रचार प्रवृत्तियां निम्न प्रकार हैं—

आगरा वेद प्रचार में शास्त्रार्थ का धमाका

'उत्तर प्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से—सन् १८९६-९७ में कई वर्ष कालेज और वेद प्रचार के पक्ष-विपक्ष के आन्दोलन के बाद संयुक्त प्रान्त में "वेद प्रचार के आविष्कर्ता और तीव्र प्रचारक श्री पं० कृपाराम जी शर्मा जगरानवी थे। मुख्य फंड "वेद प्रचार" नाम से स्थापित किया गया था। श्री पं० कृपाराम जी शर्मा जगरानवी (जो सन् १९०१ ई० में सन्यासी होकर स्वामी दर्शनानन्द के नाम से विख्यात थे) १० सितम्बर सन् १८९९ ई० को वेद प्रचार फंड की अपील के लिए आगरा आये थे। उनके एक व्याख्यान के पीछे मौलवी जहांगीर खाँ ने प्रश्न करना चाहा जिसकी उन्हें स्वीकृति दी गई। प्रशंसित पण्डित जी के उत्तम समाधान से मौलवी साहब चुप हो कर चले गए। दूसरे दिन वेद प्रचार की अपील थी, उसका विज्ञापन दिया जा चुका था परन्तु मौलवी साहब फिर अपने बहुत से मित्रों सहित पधारे और बात-चीत करने की इच्छा प्रकट की। श्री पण्डित कृपाशंकर जी एम० ए० प्राज्ञ मन्त्री आर्य समाज ने यह विचार करके कि आज शास्त्रार्थ होने से अपील में हर्जा होगा, मौलवी साहब से कहा, ९ बजे तक नियमानुसार शास्त्रार्थ कर सकते हैं। इसे मौलवी साहब ने स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन समाज के सामाजिक प्रधान बा० जमुनादास जी विश्वास ने जब नियम बना कर भेजे तब मौलवी साहब ने यह कह कर लौटा दिए कि यह नियम बहुत सख्त हैं। मौलवी साहब ने न तो इन नियमों को स्वीकार किया और न ही अपने नियम बना कर भेजे। फिर जो नियम मौलवी साहब ने फरमाये वे ही स्वीकार कर लिए गये। शास्त्रार्थ के प्रबन्ध के लिए "जेस फारनेन" नामक एक प्रतिष्ठित यूरोपियन महाशय नियत किए गए। जब शास्त्रार्थ का समय

आया तो मौलवी जहांगीर खां अलग खड़े हो गए और उनके स्थान पर मौलवी अबुल फरह, अब्दुल हमीद पानीपती सामने आये। आर्य समाज की ओर से श्री पं० कृपाराम जी शर्मा सतर्क समाधान करते रहे—फिर और तीन दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा। विषय वेद तथा कुरान का इलहामी होना था। यह शास्त्रार्थ उर्दू में १६ पृष्ठों पर उसी समय छाप दिया गया, साथ ही १०वें पृष्ठ पर प्रश्नोत्तर और शास्त्रार्थ के मध्यस्थ श्री फारनेन साहब सिविल लाइन आगरा का अंग्रेजी में लिखा हुआ स्वामी जी की विजय का निर्णय भी छाप दिया गया। इस शास्त्रार्थ (ट्रेक्ट) के साथ ही "कुरान की छानबीन" प्रथम भाग ३२ पृष्ठ की उर्दू में छपी है।"

प्रसिद्ध तार्किक पादरी ज्वालासिंह आदि से शास्त्रार्थ

एक शास्त्रार्थ प्रसिद्ध तार्किक पादरी ज्वालासिंह जी से सन् १९०४ में हुआ था। समाज की ओर से समाज के सभ्य पं० कृपाशंकर जी एम० ए० और श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती (वही सन् १८९९ के शास्त्रार्थ वाले पं० कृपाराम शर्मा) थे।

सन्यास भूमिका या आगरा शास्त्रार्थ : आओ शास्त्रार्थ जीवी बनें

पण्डित कृपाराम शर्मा दिल्ली और उत्तर प्रदेश में ट्रेक्ट और मासिक रिसाले निकाल रहे थे और उनके प्रकाशन आदि की विविध प्रवृत्तियों के केन्द्र बना कर उनके संचालन में संलग्न थे। वे सम्प्रदायवाद के पास फटके तक न थे, एक सच्चे फिलासफर के रूप में ऋषि दयानन्द द्वारा व्याख्यात सत्य का प्रयोग और उसका प्रतिष्ठान ही इनका जीवनध्येय बना हुआ था।

इन्हीं वर्षों में आर्य प्रतिनिधि सभाओं का संगठन बना था। जिनमें कानूनी दांव पेच के खेल प्रायः होते थे। अधिकांशजन इन सभाओं में अध्यात्म परम्परा और शास्त्रमर्म से अनभिज्ञ ही होते थे। वे ऋषि दयानन्द या शंकराचार्य जैसे तत्ववेत्ताओं का अनुगमन कैसे कर सकते थे? ऐसे संगठन हमारे पवित्र चरित्र नायक को रुचते न थे।

संवत् १९५७ (सन् १९०१ ई०) की बात है, इटावा निवासी वैदिक पं० भीमसेन जी शर्मा महर्षि दयानन्द के शिष्य और उनके भाष्यादि के लेखक करके प्रसिद्ध रहे हैं। ऋषि दयानन्द के निर्वाण के पश्चात् उनका प्रभावशाली मासिक पत्र "आर्य सिद्धान्त" कई वर्षों से चल रहा था। समय चक्र से वे कर्मकाण्ड विषयक जगड़ाल में उलझ गए। एक बड़े सेठ को यज्ञ कराना था। उसमें प्रशंसित पण्डित जी ही ब्रह्मासन पर थे। उस यज्ञ के विधि विधान के जाल में ग्रस्त पण्डित जी ने आटे का मेष बनवाया। इसी चेष्टा से आर्य जगत में उनके प्रति क्षोभ का बवंडर खड़ा हो गया। पण्डित जी अपनी जिद के कारण सन् १८९९ ई० में खुल्लम-खुल्ला पौराणिक बन गये। बाद को "आर्य सिद्धान्त" की जगह "ब्राह्मण-सर्वस्व" निकालने लगे।

ऋषि दयानन्द के प्रतिनिधि "आर्य समाज" ने तो विशुद्ध वैदिक सिद्धान्त का प्रचार अपना रोज का धन्धा बनाया ही हुआ था, इसलिए आर्य समाज के आह्वान पर श्री पं० भीमसेन जी को विवश हो शास्त्रार्थों के लिए आर्य विद्वानों के सामने आना पड़ा। फलस्वरूप सन् १९०१ ई० की फरवरी की १९, २०, २१, तारीखों में आगरे में उनसे पहला तगड़ा शास्त्रार्थ मृतक श्राद्ध विषय पर हुआ, जो मेरठ के स्वामी प्रेस में पुस्तकाकार में छप भी गया था। आर्य समाज की ओर से प्रमुख वक्ता मेरठ निवासी सामवेद भाष्यकार श्री पण्डित तुलसीराम स्वामी थे।

पण्डित कृपाराम शर्मा १८९९-१९०० ई० में आगरा को अपना केन्द्र बना कर अपनी वाग्धारा बहाने के साथ वृहत् प्रकाशन चला रहे थे; इस शास्त्रार्थ में इनकी उपस्थिति स्वाभाविक थी। आगरा में

उनकी व्यापक प्रवृत्तियों का वृत्त "आगरा वृत्तान्त" में पढ़िए। इनके संचालित काशीस्थ विद्यालय के अधीन पण्डित गंगादत्त जी आचार्य और पण्डित भीमसेन शर्मा (आगरे वाले) भी उपस्थित थे। अन्तिम समय शास्त्रार्थ का प्रबन्ध और सभापतित्व यही पण्डित मण्डली सम्भाल रही थी। इसी शास्त्रार्थ में मैदान छोड़ कर जाते हुए प्रसंग पर पण्डित सम्बोधन करते हुए पण्डित कृपाराम शर्मा ने कहा—"पण्डित जी आप वृद्धावस्था की ओर जा चुके हैं और मैं घरेलू झंझटों से कभी का मुक्त हूं तो "मृतकों का श्राद्ध" शास्त्रोक्त है या शास्त्र विरुद्ध इस बड़े विषय के लिए आइये मैं और आप गृहस्थाश्रम छोड़ कर सन्यास धारण कर लें। आप भारत भ्रमण पर निकलिये, जहां-जहां पर आप इसे सिद्ध करेंगे वहीं-वहीं पर मैं इसका खंडन करूंगा। सत्य के निर्णय के लिए कमर कस कर मैदान में आ जाइये, मैं अभी दीक्षा लेकर वेष भूषा बदलने को तैयार हूं। इस घोर घोषणा को सुन कर पण्डित भीमसेन जी कुछ दिङ् मूढ़ से होकर बोले आप त्याग कर सकते हैं पर मैं गृहस्थाश्रम अभी छोड़ने को तैयार नहीं हूं।"

शास्त्रार्थ के इस दृश्य सम्बन्धी ये पंक्तियां इस निबन्ध के लेखक ने एक प्रसंग पर फीरोजाबाद (जिला—आगरा) निवासी श्रीयुत चौबे देवीप्रसाद जी एम. ए. एल. एल. बी. रिटायर्ड मुन्सिफ के मुखारविन्द से इसी १९५८ ई० के दिसम्बर मास की १४ तारीख को कर्णगोचर की थीं। चौबे जी इस समय लगभग ८५ वर्ष के हैं, उक्त शास्त्रार्थों का दृश्य देखने के उद्देश्य से तब से बड़े चाव से आगरा आर्य समाज में उपस्थित रहे थे।

वे ३६ दिन

आर्य समाज आगरा का यह शास्त्रार्थ तभी स्वामी प्रेस मेरठ में छप गया था। इसमें "पण्डित कृपाराम शर्मा" शब्द हैं न कि स्वामी दर्शनानन्द। उधर "बिजनौर मंडल आर्य समाज का इतिहास" कार्तिक १९८६ वि० में छपे वृत्तान्त में बिजनौर में २९-३० मार्च १९०१ ई० को हुए शास्त्रार्थ में "स्वामी दर्शनानन्द जी" नाम है न कि पं० कृपाराम शर्मा। आगरा और बिजनौर के इन दोनों शास्त्रार्थों का समय केवल ३६ दिन का स्पष्ट है। चरित्रनायक के सन्यास ग्रहण का निश्चित समय इसी के अवान्तर है।

पं० कृपाराम शर्मा के अनुज श्री पं० मुनीश्वर शर्मा द्वारा लिखित उर्दू ट्रैक्ट "दर्शनानन्द चरित्र सार" में सन् १९०० ई० तक के शाहजहांपुर तक के उल्लेख में "पण्डित" शब्द है। सन् १९०२ ई० तक के उनके प्रचार वृत्तान्त में वे "स्वामी जी" शब्द का प्रयोग करते हैं। "सन्यास कब ग्रहण किया" इस बात का उल्लेख वृतान्त उस ट्रैक्ट में नहीं है। स्वामी दर्शनानन्द जी के देहान्त के बाद इलाहाबाद की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका "सरस्वती" ने अपने जून सन् १९१३ ई० के अंक में उनके "राजघाट" पर सन्यास ग्रहण करने का निश्चित रूप से उल्लेख किया है।

सन्यास लेते ही बदायूं में

मैंने चरितनायक के प्रथम दर्शन सन् १८९९ ई० में गृहस्थ वेशभूषा में किये थे। आर्य समाज मन्दिर बदायूं में आगमन पर उनके प्रवचनों का श्रवण किया था और मैंने उनकी किंचित सेवा का सौभाग्य भी प्राप्त किया था। फिर १९०० ई० में दो दुबारा बदायूं समाज के वार्षिकोत्सव पर उनके उपदेश श्रवण का लाभ उठाया। तब प्रायः उनके सत्संगों में हमें उनसे पण्डित जी सम्बोधन करने का अभ्यास पड़ा हुआ था। जब वे १९०१ ई० में राजघाट और चन्दौसी से बदायूं पधारे तब वे नगर में न ठहर कर लाला हरप्रसाद जी रईस के प्रसिद्ध बगीचे की कोठी में ठहरे थे। मैं अपने पूज्य पिताजी पं० रामप्रसाद जी शर्मा तथा पं० रामचीमल जी आदि बहुजनों के साथ उनके दर्शनार्थ उस कोठी पर जाया करता था। तब मैं एक

वर्ष पहिले का अभ्यास "पण्डित जी" ही सम्बोधन करता था। जब मुझे बुजुर्ग लोग इशारा करते थे तब मैं "स्वामी जी" नया शब्द सम्बोधन करने की चेत में आता था। इस कोठी पर होने वाले सत्संगों में मैं सदा ही शामिल रहता था। सभी उनसे निःशंक वार्तालाप किया करते थे, वे थकना जानते ही न थे। यह हमारे लिए सन्यासी परिधान में दर्शन करने का प्रथम सुअवसर था। उस समय आमतौर पर प्रसिद्धि थी कि स्वामी दर्शनानन्द जी राजघाट पर सन्यास दीक्षा लेकर पधारे हैं और बदायूं के दक्षिण नौली नामक गंगा तट पर गुरुकुल खोलने का विचार कर रहे हैं। इस संस्मरण से भी उनका १९०१ ई० के बसन्त में राजघाट पर दीक्षा ग्रहण का समय निश्चित होता है। यह स्पष्ट ही है कि आगरा शास्त्रार्थ तक पण्डित कृपाराम शर्मा ने सन्यास नहीं लिया। वे बात के बड़े धनी थे। 'टरे न सत्य विचार" कड़ी टेक इनकी जीवन संगिनी थी और फिर खुले मैदान सन्यास दीक्षा की घोषणा! इस घोर प्रतिज्ञा ने दो प्रतिद्वन्द्वियों में से अकेले इस प्रणवीर का ही वरण किया। किसी काम में देर करने से इन्हें बैर था। अन्तःकरण से ये सन्यासी होश सम्भालने के दिन से ही थे। अब वचन-पालन के चिन्तन में डूब गए। थोड़ा भ्रमण करके कुछ दिनों बाद ही आप गंगा तट राजघाट (जिला बुलन्दशहर) जा पहुंचे।

दीक्षा का नीर समीर

राजघाट की रमणीय गंगा तटी ऋषि दयानन्द के विचरण की भी चिरस्मरणीय भूमि है जो महर्षि की जीवन घटनाओं के प्रसिद्ध स्थान कर्णवास के पास ही है। ऋषि दयानन्द की ही तरह मत-मतान्तरों से दूर रहकर सत्य के अन्वेषक तत्वदर्शी कृपाराम अब यहाँ रमण करने लगे। यह फाल्गुन चैत्र की सन्धि बेला थी। कुसुमोद्यानों और आम्रकुंजों पर कुसुमाकर का साम्राज्य छा रहा था। उसके सौरभ से अभिषिक्त वह वायुमण्डल मानों कृपाराम के आराम और विश्राम की तैयारी में लगा था। पण्डित जी ने अपने सर्ववेदस यज्ञ का विधान और मुहूर्त निश्चित कर डाला और वहाँ पर विराजमान विरक्त स्वामी अनुभवानन्द से आपने विधिवत् सन्यास दीक्षा प्राप्त कर ली। बहुमूल्य रेशमी वस्त्र वाले शुभ्रवेषी कृपाराम अब "पाणिपात्रो दिगम्बरः" स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती बन गए। दो-तीन सप्ताह पूर्व आगरा शास्त्रार्थ में पण्डित भीमसेन जी के साथ किए प्रण का पालन कर लिया, यों उनकी हृदयोर्मि को शान्ति मिली। चरित्र के वाचक पीछे पढ़ चुके हैं कि सन १८८० ई० के लगभग २० वर्ष की आयु के भरे यौवन में कृपाराम शर्मा घर से चुपचाप निकलकर "नित्यानन्द" आजाद सन्यासी बन गये थे। काश्मीर की कन्दराओं में चक्कर काटने और भयंकर जन्तुओं की लपेट से बचने के बाद कहीं पण्डित जयराम शर्मा (उनके चाचा) की खोज से दीनानगर में पकड़े गए थे। वे किन विचित्र शर्तों पर वापस लौटे, इसे जगरावां प्रकरण में पढ़िये। खिन्नमन, मोहमुक्त व अपने पूज्य पिता के आग्रह पर गृहवासी बने थे। देखिये कि घटिका यन्त्र की वह सुई की नोंक घूम फिर कर अब फिर वहीं आकर रुकी। जगरावां को तो आपको पहले भी कम जाना मिलता था। "वार्धक्ये मुनिवृत्तीनाम्" का समय अभी दूर था। अभी तो आप ४५वें वर्ष में ही थे। इस समय इनके विशाल परिवार में आप्तों में तो केवल पूज्या माता और कुटुम्बी चाचा पं० जयराम शर्मा ही विद्यमान थे। शेष में यह सबसे ज्येष्ठ थे। अनुज पं० कर्ताराम, पं० रामजीदास, पं० मुनीश्वर शर्मा और इनके पुत्रद्वय नृसिंह शर्मा, अमरनाथ शर्मा अभी वयस्क भी नहीं हो पाए थे। दादी और माता इस युगल सहोदर की रक्षा-शिक्षा में निरत थीं। वैदिक सत्य के अभियान पर चढ़े हुए शास्त्रार्थ समर विजयी इस शूर को ऐसा सूर चढ़ा कि इसके अपने संभ्रान्त परिवार की मोह माया के सघन वन अपने आप फटते चले गए। छोटे-बड़े सभी की बेखबरी में तीन एषणाओं के स्पर्श से अछूता रहकर इस ब्रह्मोपासक ने उधर से बिल्कुल ही मुख मोड़ लिया। ऐसे सच्चे साहस और त्याग के लिए जो महान् हृदय और आत्म बल चाहिए—वह इस शरीर में मौजूद था। सीमित बन्धुत्व के

सुदृढ़ रस्से को इस सुभट गृहपति ने तोड़ ही तो डाला और अब वह क्या बना। वह बना तीनों ऋणों से मुक्त वसुधा कुटुम्बी, विश्व बन्धु और सहस्रों हृदय मन्दिरों का सम्राट और परिव्राट।

व्याख्यानों का चमत्कार

पहला चमत्कार ताजपुर राजमहल में रात भर शास्त्रार्थ

ताजपुर (जि० बिजनौर) के एक ताल्लुकेदार राजा साहब कहलाते थे। इनके यहां अंग्रेजी प्रभाव से ईसाइयत घुस गई थी, पर पं० कृपाराम शर्मा के धूमधाम प्रचार से उस ईसाइयत के बादल छट गए थे।

एक बार राजा साहब की इच्छा से उनके एक नास्तिक दीवान साहब से शास्त्रार्थ छिड़ गया। कुछ शर्तें भी लगीं। एक सनातन धर्म के विद्वान् पं० अम्बिकादत्त जी ने कहा कि "हम और पं० कृपाराम एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। शर्त कुछ नहीं, सौ रुपये लेते आवेंगे। भूख लगेगी तभी उठ आवेंगे। कृपाराम की भूख भी शास्त्रार्थ है।" शास्त्रार्थ राजमहलों में सायंकाल आरम्भ हुआ। पं० कृपाराम शर्मा ने दीवान महाशय की नास्तिकता की दी हुई १४ युक्तियों का परिहार (खण्डन) कर दिया जो दीवान साहब ने मान लिया और पण्डित जी ने अन्त में "सृष्टि कर्त्ता" कोई चेतन शक्ति अवश्य है। इस पर सात प्रबल युक्तियां दीं और कहा, इनमें से आप एक युक्ति को भी काटिये। नास्तिक पक्ष के प्रबल पक्षकार दीवान महोदय ने कहा कि इनमें से मैं तीन ही समझ सका, शेष चार युक्तियां मेरी समझ में नहीं आई। तब पं० कृपाराम शर्मा ने कहा कि—इसी दिमाग से आप शास्त्रार्थ करने आये हैं? इतना वाद होने पर रात्रि के २ बज गये थे। नास्तिक महोदय के इस प्रकार परास्त होने पर मैदान में डटे हुए पं० कृपाराम शर्मा ने राजा साहब को सम्बोधित करके कहा "अब और कोई मुबाहिसा पहलवान लाइये।" इसके पश्चात् वह सभा शान्ति से विसर्जित हो गई।

व्याख्यान का दूसरा चमत्कार

सन्यास धारण के पश्चात् स्वामी जी महाराज का प्रचार केन्द्र दैव के यहां बदायूं बनता जा रहा था। वहां से गुरुकुल खुल जाने पर "आर्य सिद्धान्त" मासिक और "मुबाहिसा" साप्ताहिक चल रहे थे। अब आपके दौरे रुहेलखण्ड कमिश्नरी में अधिक होते थे। इन्हीं दिनों आप पीलीभीत और पूरनपुर भी पधारे उस समय के स्वामी जी महाराज के व्याख्यानों का वृत श्रीयुत रामबहादुर जी मुख्तार मंत्री आर्य समाज पूरनपुर का लेख पढ़िए जो हमें श्रीयुत चतुर्वेदी पं० सरजीवनलाल जी मिश्र से प्राप्त हुआ है। "सन् १९०१ ई० की बात है कस्बा पूरनपुर जिला पीलीभीत के निवासी स्व० लाला हुलासराय जी थे। निरक्षर तथा निःसन्तान थे। उनके हृदय में धार्मिक भावना जागृत हुई तो उन्होने अपने गृह को ठाकुर द्वारे में परिवर्तित करने तथा अपनी सम्पत्ति, जिसमें एक मकान व ६ दुकानें थीं ठाकुरद्वारे के नाम करने का संकल्प कर लिया था। मकान का नीचे का भाग मन्दिर के रूप में बनवा दिया, केवल मूर्ति की स्थापना होना शेष रह गया। अपने रहने को कुछ ऊपर बनवा लिया और उसके बाद एक दिन पीलीभीत जाकर अपनी सारी सम्पत्ति ठाकुरद्वारा के नाम संकल्प करके रजिस्ट्री करा दी। परन्तु दैवयोग से उसी दिन पूज्य स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज का व्याख्यान आर्य समाज मन्दिर पीलीभीत में हो रहा था और वह भी ईश्वर विषय पर। लाला हुलासराय जी उसको सुनने लगे। स्वामी जी के प्रभावशाली व्याख्यान ने उनके हृदय में उथल-पुथल मचा दी और वह मन ही मन सोचने लगे कि यदि मैं अपनी सम्पत्ति आर्य समाज को दे देता तो उचित था। परन्तु अब तो वे रजिस्ट्री करा चुके थे। पश्चात्ताप करते घर लौटे, विधाता को पूरनपुर में वैदिक धर्म की नींव लगानी थी। दैवयोग से स्वामी जी महाराज दूसरे ही दिन पूरनपुर आ गए। दो व्याख्यान पूरनपुर में भी हुलासराय को

सुनने को मिल गये, तब तो लाला हुलासराय ने वकीलों से मशवरा लेना आरम्भ कर दिया क्योंकि मूर्ति की स्थापना न हो पाई थी, इसलिए वकीलों के परामर्श से लाला हुलासराय ने अपनी सारी सम्पत्ति को आर्य समाज पूरनपुर के निमित्त आर्य प्रतिनिधि सभा उ० प्र० के नाम रजिस्ट्री कराकर आर्य समाज को कब्जा दे दिया। तब तो उस समय के सनातन धर्मी और यवन एक हो गए और लाला हुलासराय को बहुत मारा-पीटा और जबरदस्ती मकान में घुस पड़े। परन्तु पूज्य स्वामी दर्शनानन्द के वचनामृत पान किये हुए लाला हुलास राय सन्मार्ग से किंचित न डिगे और न भयभीत हुए। अन्ततोगत्वा सन् १९०५ ई० में हाईकोर्ट से आर्य प्रतिनिधि सभा के हक में डिग्री हुई और सारी सम्पत्ति आर्य समाज पूरनपुर व आर्य प्रतिनिधि सभा को प्राप्त हुई एवं भगवान की दया से आर्य समाज पूरनपुर सब सम्पत्ति का सुचारुरूपेण प्रबन्ध करता हुआ दिन प्रतिदिन उन्नति की ओर अग्रसर है।''

तीसरा चमत्कार

उपर्युक्त घटना से एक दम मिलती-जुलती एक और घटना है; आर्य समाज के किन्हीं उपदेशक महोदय ने मुझे सुनाया था कि जलेसर कस्बे (जि० एटा) में देव मूर्तियां स्थापित करने के लिए एक सज्जन ने एक बढ़िया मन्दिर बनवाया। तैयार हुआ ही था कि उन्हीं दिनों वहां स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज के व्याख्यान हुए जिनका प्रभाव उस सज्जन पर इतना पड़ा कि उन्होंने मूर्तियों की स्थापना करने के बजाय उसे आर्य समाज मन्दिर के रूप में दान दे दिया।

चौथा चमत्कार

मुझे बदायूं के श्री पं० ललिता प्रसाद जी शर्मा ने सुनाया था कि एक तांगे में इसी जिले की किसी लम्बी सड़क पर स्वामी जी और एक उपदेशक महोदय बैठे जा रहे थे। विश्रान्ति के लिए तांगा किसी स्थान पर खड़ा किया। स्वामी जी से विनोद तो कुछ लोग किया ही करते थे। वहां पास ही एक बाग में कुछ कंजड़ों के डेरे लगे हुए थे। वे अपने काम की उधेड़ बुन में संलग्न थे। उपदेशक महोदय ने स्वामी जी से कहा कि आप बड़े-बड़े नगरों में तो अपनी अपील के द्वारा लोगों की जेबों से रुपया निकलवा लेते हैं, तब जानें जब कि इन डेरे वालों से भी कुछ रुपया निकलवा लें। स्वामी जी बिना उत्तर दिए, टहलते हुए उन डेरे वालों से किंचित अन्तर पर खड़े होकर व्याख्यान देने लग गए। शनैः-शनैः वे कंजड़ स्वामी जी के इर्द-गिर्द इकट्ठे हो गए और लगातार कुछ देर तक एक टक व्याख्यान सुनते रहे और व्याख्यान समाप्ति पर अपने-अपने डेरों में भाग गए और क्षणों में ही स्वामी जी के पास आकर स्वामी जी को यथाशक्ति दक्षिणा दे दी और वहां यह एक अच्छी छोटी मोटी रकम इकट्ठी हो गई। उपदेशक महाशय विनोद तो कर बैठे, पर अब उनके चेहरे पर सन्नाटा छा गया और उनकी मुद्रा गम्भीर हो गई। स्वामी जी की बत्तीसी खिल रही थी। उपदेशक जी से बोले''कहिए पण्डित जी क्या मामला है।''

शास्त्र सेनानी रणभूमि में

ओ३म् अनुहतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः।
आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतोऽयनम्। अथर्व० ५।३०।७।१।।
ऋषि बोध प्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृतिः।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम् (२) अथर्व० ५।३।१०।१।।

शिखर मार्ग की दुर्गम चढ़ाई चढ़ता हुआ तू विद्वान् फिर भी उसी पर चढ़, क्योंकि तुझ जीवित जागृत के अयन आरोहण और आक्रमण ही तो हैं। (१)

स्वाभाविक ज्ञान और नैमित्तिक (ईश्वरीय) ज्ञान ये दो ऋषि कभी न सोकर सदा जागृत हैं। सो हे मेधावी जीव! तेरे जीवन के यह रक्षक दिन रात जागते रहें। (२)

विद्याशस्त्रस्य शास्त्रस्य द्वे विधे प्रतिपत्तये।
आद्या हास्याय वृद्धत्वे द्वितीयाद्रियते सदा॥
विपदि धैर्यमथा भ्युदये क्षमा सदसि वाक् पटुतायुधिविक्रमः।
यशसि चाभिरुचि र्व्यसन श्रुतौ प्रकृति सिद्धि मिदं हि महात्मानाम्॥

\+ \+ \+

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
वैदिका अवैदिका स्तत्र किं कुर्वत दैवत॥

सिद्धान्त के निर्णय के लिए शास्त्रार्थ ही अन्तिम आधार है। महामुनि गौतम ने अपने न्याय दर्शन में इसे ये संज्ञायें दी हैं—वाद, जल्प और वितण्डा। तेईस सौ वर्ष पहले शंकराचार्य महाराज ने इस अस्त्र से काम लिया था। इस नये युग में इस ब्रह्मास्त्र को ऋषि दयानन्द ने सर्वप्रथम हाथ में लिया। फिर उनकी शिक्षाओं से दीक्षित पण्डित वर्ग ने भी अनेक शास्त्रार्थ किए। आर्य जगत के आरम्भिक युग में पं० लेखराम जी, पं० तुलसीराम स्वामी, स्वामी नित्यानन्द जी, पं० आर्य मुनि जी, पं० भीमसेन शर्मा (इटावा वाले), सम्पादकाचार्य पं० रुद्रदत्त जी, पं० गणपति शर्मा, पं० बिहारीलाल जी शास्त्री, पं० मुरारीलाल शर्मा, पं० सोमदत्त जी, पं० रामचन्द्र देहलवी, पं० कालीचरण जी, पं० महेशचन्द्र जी, पं० आनन्द भिक्षु जी और पं० देवेन्द्र शास्त्री जी खूब प्रसिद्ध रहे हैं। संस्कृत, फारसी, अरबी के भी आर्य विद्वान् शास्त्रार्थ महारथी आर्य जगत में इस समय उपस्थित हैं। पर उपनिषद् और दर्शनों के तैराक, गोडपादाचार्य, शंकराचार्य और भट्टाचार्य आदि की भाष्य शैली तथा वाद शैली के अवगाहन-कर्त्ता, आलोचक, समालोचक, तत्ववेत्ता स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती महाराज जैसा सिद्ध हस्त, वाग्भट्ट आर्य जगत में अपनी उपमा स्वयं ही था। हम अपने वन्दनीय चरित्र नायक के सैकड़ों शास्त्रार्थों में से इस निबन्ध में दिग्दर्शन मात्र थोड़े से दे रहे हैं। यह लगभग सभी यथासमय मुद्रित होते रहे हैं। इन शास्त्रार्थों और शंका समाधानों में स्वामी जी महाराज के वदनारविन्द की छटा देखते ही बनती थी। उस दृश्य और इनकी वाणी प्रवाह का आनन्द हमने स्वयं लूटा है।

सन् १९०४ ई० में पीलीभीत, सम्भल, सरायतरीन (जि० मुरादाबाद) ताजपुर स्टेट (जिला बिजनौर) के राजमहलों में धर्मपाल जी पादरियों और मौलवियों के साथ और कई जगह जैनों और नवीन वेदान्तियों के साथ, आपके शास्त्रार्थ प्रसिद्ध रहे हैं। बदायूं गुरुकुल के उत्सवों पर पादरी ज्वालासिंह से कई बार शास्त्रार्थ हुआ है। कुंवरगांव (जिला बदायूं) में भी पादरी ज्वालासिंह को स्वामी जी ने खूब छकाया था। इन सब को यदि पूरा लिखा जाय तो दो हजार पृष्ठ से कम का ग्रन्थ न बनेगा। शास्त्रार्थों में आप कभी भी व्यंग और कटु भाषा का प्रयोग नहीं करते थे। कहीं भी कोई भी प्रतिद्वन्दी आपके व्यवहार की शिकायत न कर सका, उल्टा यह होता था कि प्रतिद्वन्दी के अनुचित व्यवहार को आप क्षमा करते हुए उसे मैदान से भागने का अनुचित लाभ नहीं उठाने देते थे।

कलेक्टर, कमिश्नर और पादरियों के छक्के छूटे :

स्यालकोट (नारोवाल) में ईसाई फंदा कैसे कटा, १४६ युवकों का उद्धार

लगभग १८६४ ई० की बात है जब पादरियों के ऊपर अंग्रेज अधिकारियों की विशाल छत्रछाया थी, एवं उनकी परोक्ष प्रेरणा से ईसाई मत का प्रचार जोरों से चल रहा था। नारोवाल जिला

स्यालकोट के १४२+७=१४९ (हिन्दू मुसलमान) लड़के बप्तिस्मा लेने को तैयार बैठे थे। कस्बे के पुरोहित श्री पं० बरकतराम जी, पं० कृपाराम जी शर्मा आदि के सत्संग से कुछ पहले ही आर्य विचार के हो गए थे। कस्बे के निवासी उनके यजमानों ने पहले उनसे कभी कहा था कि आप या तो आर्य समाज में रहें, या पुरोहित रहें, इस पर उन्होंने पुरोहिताई का परित्याग कर दिया और स्वतन्त्र वैद्यक आदि कार्य करने लगे थे। बाद के किसी प्रसंग पर जब यह १४९ हिन्दू मुसलमान लड़के ईसाई बनने की तैयारी में थे, तब घबराए हुए लड़कों के संरक्षक पण्डित बरकतराम जी की शरण में पहुंचे, जो कि उनके पुराने यजमान थे। वे बोले कि पं० जी हम आपकी बाडी हैं, आप हमारे ही हैं, यद्यपि हमने आपको त्यागा सा था, आप कुछ भी खर्च कर देवें, पर किसी प्रकार इन सब लड़कों को ईसाई बनने से बचाइए। उदार हृदय पं० बरकतराम जी ने उत्तर दिया कि मैं लूंगा कुछ नहीं, अपने खर्च से यह कार्य सम्भाल लूंगा आप धैर्य रखें।

पं० बरकतराम जी ने बटाला आदि कई स्थानों को तार दिए, आर्य पथिक पं० लेखराम जी को भी तार दिया। उस समय पं० कृपाराम जी बटाला में आर्य धर्म के प्रचार में निरत थे। प्रसंगवश वहां गाड़ी, तांगा कुछ भी वाहन न था। यह अन्तर २२ मील का था। पं० कृपाराम जी रात में ही चल पड़े, क्योंकि आज शुक्रवार था। रविवार को बपतिस्मा की विधि सम्पन्न होने का निश्चय हो चुका था अर्थात् शनिवार का (१२ घन्टे का) अवकाश ही शेष था, इसलिए पं० कृपाराम शर्मा रात में ही नारोवाल पहुंच गए और वहां एक तालाब के किनारे एकाकी बैठ कर कुछ युक्ति सोचने लगे। सोचते-सोचते पं० बरकतराम जी को बुला कर उनसे कहा कि एक लड़का दो, जो मुझे पादरी साहब का कमरा बता देवे, यों पं० कृपाराम जी लड़के की सहायता से पादरी साहब के पास पहुंचे, और उनसे कहा कि मैं धर्म का मुतलाशी हूं, जो कि बाईबिल के आधार पर था। पं० जी ने कहा कि मै भूल जाऊंगा, जरा लिख दीजिए। उसने धर्म का वह लक्षण लिख कर दे दिया। उसके अनन्तर, ४-५ दिन के बाद लौटा देने के वायदे पर पादरी साहब से उनकी धर्म पुस्तक मांगी। पादरी साहब ने इन्हें बाइबिल दे दी।

प्रामाणिक बाइबिल और उसमें वर्णित पादरी साहब का लिखित धर्म लक्षण जब इस प्रकार पं० कृपाराम शर्मा के हाथ में दो वस्तुएं आ गयीं, तब उन्होंने कस्बे के बाजार में खड़े होकर जोर शोर का एक लम्बा व्याख्यान दिया। परिणाम स्वरूप जनता में हर्ष, उत्साह फैल गया। तब उस समय कई छोटे पादरी घबरा गए और वह लेख और पुस्तक मांगने लगे। पं० जी ने उत्तर दिया कि वायदे के अनुसार मैं ४-५ दिन में वह लौटा दूंगा। इस प्रकार इस धुंआधार वैदिक प्रचार से वे १४९ युवक ईसाई होने से एक दम हिचकिचा गए।

व्याख्यान में पं० जी ने तुलनात्मक तार्किक ढंग से सिद्ध किया कि या तो यह धर्म व्याख्या गलत है या बाइबिल गलत है। दोनों वस्तुएं एक ही की सन्तति है। इस व्याख्यान का परिणाम यह हुआ कि उन १४९ लड़कों का एवं कस्बे की सर्व सामान्य जनता का साहस खूब बढ़ गया। सबके ऊपर ईसाई मत की पोल खुलने का गहरा असर पड़ा। वे सब लड़के बपतिस्मा तो क्या लेते, उन्होंने मिशन स्कूल में जाना भी बन्द कर दिया।

इसके पश्चात् वार्तालाप करते हुए पं० जी ने नागरिकों से कहा कि इस प्रकार लड़कों के डगमग होने में उनका दोष नहीं किन्तु आप लोगों का है, जो कि तुम इनको गैरों से तालीम दिलवाते हो, अपनी शिक्षा दो। इसका परिणाम यह हुआ कि वहां के ख्वाजा मुसलमानों ने झट चन्दा करके अपना एक स्कूल खोल दिया और दूसरी ओर आर्य समाज में तुरतातुर्त अध्यापक का प्रबन्ध न हो पाने पर पं० जी ने स्वयं ही वहां शिक्षक का कार्य आरम्भ कर दिया।

अब इसकी प्रतिक्रिया सुनिए। ईसाई पादरी वहां के तहसीलदार साहब के पास पहुंचे और रोना रोने लगे कि हमारे स्कूल में सात ही लड़के रह गए हैं, स्कूल टूट जाएगा। सरकार का नमक खाने वाले तहसीलदार साहब ने कुछ तहकीकात शुरू की, और आर्य पाठशाला में पहुंचे। उस समय पं० कृपाराम शर्मा ने निधड़क उत्तर दिया कि लड़कों को ईसाईयों की जहरीली तालीम से बचाने के लिए स्कूल खोला है।

तहसीलदार साहब—किसने खोला है?

पं० कृपाराम—आर्य समाज ने।

तहसीलदार साहब—खर्च कौन करता है?

पं० कृपाराम—आर्य समाज।

इसके पश्चात् वहां कलेक्टर साहब भी आये उन्होंने फरमाया।

कलेक्टर साहब—साबित कर सकते हो कि यह तालीम जहरीली है। इतने ही में कमिश्नर साहब भी पादरी सहित पधारे। अब पं० कृपाराम की बहस पादरियों से चल पड़ी कि तालीम जहरीली है। पादरी साहब से इसका उत्तर तो न बन पड़ा, पर उन्होंने झूठे ढोंग से रोना रोया कि ईसू के बिना इनको कौन तारेगा। जब पं० कृपाराम जी ने कहा कि—"ईश्वरीय विद्या बच्चों का खेल नहीं है।' दलील दीजिए, रोने से मेरे आगे काम नहीं चलेगा। तब ईसाईयों से कुछ भी उत्तर न बन पड़ा और चलते बने और बाजार में यह गाना गाते डोलने लगे—

ईसा मेरा राम रमैया, ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया,
मुख से ईसा ईसा बोल, तेरा क्या लगेगा मोल। इत्यादि

इसके उत्तर में पं० कृपाराम शर्मा का यह पंजाबी पद्य जनता में गली-गली में गूंज उठा—

सच्ची बात हमारी भाइयो, सुन लो जरा खलो के।
वह क्या तुमको मुक्ति देसी, जो मर्या रो रो के।
फल आंबा का किसने खाया, कीकर दा बी बो के।
आर्य धर्म निकाला ईश्वर, दुनिया दूध बिलो के।
गुन्हेमार को मारे खालिक, शूली नाल पिरो के।
जो मूर्दों को पूजे मूरख, मरदा काफर होके। इत्यादि

इस काण्ड से आर्य जन शिक्षा लेवें

शास्त्रार्थ आदि प्रसंगों पर पैदल लम्बी मन्जिलों का सूनी रात में तय करना भी पं० कृपाराम शर्मा को थकाता नहीं था और शास्त्रार्थ तो उनकी भूख का भोजन था। पाठक उनकी लगन का किंचित तो नाप तोल करें और कृपाराम की कृपा को हृदयंगम करें कि किस प्रकार उन्होंने भोले युवकों को गुमराह होने से बचाने की कृपा की।

भारत में स्वराज्य स्थापना के बाद के वर्षों में पिछड़े वर्ग में ईसाइयत का प्रचार जोरों पर है। आर्य संस्थाओं के लीडर वहां पैदल चल कर तो क्या कार में सवार होकर भी क्या, ईसाई केन्द्रों में पहुंच सकेंगे?

बिजनौर का शास्त्रार्थ : पं० भीमसेन जी शर्मा सामने न आये

"बिजनौर मण्डल आर्य समाज का इतिहास" नामक पुस्तक के पृष्ठ ४३-४४ पर इस शास्त्रार्थ का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—बिजनौर आर्य समाज और बिजनौर धर्म सभा का द्वितीय शास्त्रार्थ

सन् १९०१ ई० के ग्रीष्म में २९-३० मार्च को "प्रायश्चित्त" विषय पर चित्रगुप्त मन्दिर के समीप हुआ था। शास्त्रार्थ सभा के प्रबन्ध कर्ता सभापति लाला रामगुलाम जी प्रधान बिजनौर धर्मसभा थे। आर्य समाज की ओर से स्वामी दर्शनानन्द जी तथा आगरा निवासी पं० भीमसेन जी और धर्मसभा की ओर से इटावा निवासी भूतपूर्व आर्य पं० भीमसेन जी और मुरादाबाद निवासी पं० ज्वालाप्रसाद जी आदि सुशोभित थे। इटावा निवासी पं० भीमसेन जी बोलते न थे, केवल प्रमाण आदि निकाल कर देने की सहायता दे रहे थे। शास्त्रार्थ लिखित और मौखिक दोनों प्रकार से हुआ था।

धामपुर शास्त्रार्थ

धामपुर आर्य समाज तथा धर्म सभा का एक दूसरा शास्त्रार्थ इसी सं० १९६२ वि० के द्वितीय वार्षिकोत्सव के समय "श्राद्ध" विषय पर हुआ। आर्य समाज की ओर से प्रसिद्ध दार्शनिक तार्किक शिरोमणि स्वामी दर्शनानन्द की जीवित पिता के श्राद्ध पोषक वक्ता थे तथा धर्म सभा की ओर से मोदेपुर निवासी व्याकरण केसरी पं० बिहारीलाल जी मृत पितृ श्राद्ध के समर्थक भाषणकर्ता थे। प० बिहारीलाल जी अपने प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किये हुए "ये अग्निष्वात्ताः" इत्यादि वेद मंत्र के लिये हुए अर्थान्तर पर आपत्ति उठाते हुए उनके काषाय वस्त्रों पर आक्षेप करने लगे और कहने लगे कि इनको वेद मंत्र का अनर्थ करते हुए अपने काषाय वस्त्रों पर लज्जा आनी चाहिए। इस व्यक्तिगत आक्षेप का आर्य समाज की ओर से प्रतिवाद किया गया। परन्तु स्वामी दर्शनानन्द जी ने इन प्रतिवादों को रोककर अपने विषय में प्रतिपक्षी को यथेष्ठ आक्षेप करने देने की उदारता दिखाई। इस शास्त्रार्थ का धामपुर की जनता पर आर्य समाज के पक्ष में अच्छा प्रभाव पड़ा और मृतक श्राद्ध की असारता सबको भली प्रकार ज्ञात हो गई।

देवरिया की विजय यात्रा

गुरुकुल सूर्यकुण्ड बदायूं में मुझे एकदम आज्ञा मिली कि "आंवले" तक के लिए एक इक्का कर लाओ। मैं तुरन्त (दो मील बाहर तक) तेज चाल से गया। बदायूं में रेलवे लाइन तैयार हो रही थी, तब तक बदायूं की आवा-जाई १९ मील दूर स्थित आंवला (जिला-बरेली) रेलवे स्टेशन से होती थी। बदायूं अड्डे के इक्के वाले मुझे देखते ही घेरने लगे क्योंकि वे भांप गए कि स्वामी जी का आदमी आया है। इसलिए मैं चलूंगा, मैं चलूंगा की पुकार मच गई। कारण यह था कि स्वामी जी महाराज एक बार मुंह मांगा किराया क्षण भर में दे देते थे। उनसे इक्के वाले बेहद संतुष्ट थे। घोड़ा इक्का बहुत ही बढ़िया रखते थे। तेज घोड़ों को यह १९ मील की यात्रा एक घण्टे की प्रसिद्ध थी। मुझे कठिनता पड़ी कि मैं किस इक्के को गुरुकुल ले जाऊं। एक पुराने भक्त को मैं ले आया। चटपट सामान रखा गया। वह कितना था? थोड़े से फल, एक छोटी सी कुरान शरीफ की सुनहरी सुन्दर जिल्द और दो चार वस्त्र, बस। पाठक विचार करें कि पचास महारथियों के मुकाबले के लिए हमारा यह एक सेनापति कितना सैन्य दल और कितनी सैन्य सामग्री के साथ विजय कूंच कर रहा है। जल्दी से स्वामी जी महाराज इक्के में विराज गए और वह अश्वरथ द्रुत-गति से चल पड़ा। सारथि भी लालायित में उमंग भरा मुसकराता हुआ 'आंवले' को चल पड़ा। हम विद्यार्थी प्रणिपात कर विजय के उत्साह में अन्दर अपने आश्रम में आकर उछलने-कूदने लगे।

गुरुकुल बदायूं के मुख्य पत्र मासिक आर्य सिद्धान्त अगस्त सन् १९०१ ई० में निम्न पंक्तियों में देवरिया के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ का वर्णन इस प्रकार है:—

"तहसील देवरिया" जिला गोरखपुर में यह बड़ा शास्त्रार्थ आर्य समाज और मुसलमानों के मध्य हुआ। मुसलमानों की ओर से बहुत से मौलवी (साहिबान) महाशय जिनकी संख्या ५० से न्यून न होगी,

दूर-दूर से पधारे थे। (१) अमृतसर से मौ० सनाउल्ला साहिब, (२) देहली से मौ० अब्दुलहक साहिब, (३) मेरठ से मौलवी अबूरहमत साहिब, (४) पानीपत से मौ० अब्दुल हमीद साहिब, (५) बरेली से मौ० शुजाअत अली साहिब और (६) रहीमाबाद से मौ० अब्दुल अजीज साहिब इत्यादि विद्वान् शास्त्रार्थ में आए हुए थे। आर्य समाज की ओर से (१) श्री स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी, (२) पं० रुद्रदत्त जी, (३) मुंशी गिरधारी लाल, (४) पं० नन्दकिशोर देव शर्मा जी, (५) पं० मुरारीलाल शर्मा सिकन्दराबादी नियत थे। विषय इस शास्त्रार्थ का यह था कि 'वेद' इलहाम (ईश्वरोक्त) है अथवा "कुरान"। पहले दिन आर्य समाज की ओर से प्रश्न हुआ कि "इलहाम" का लक्ष करो और इलहाम का प्रयोजन, अधिकारी विषय और सम्बन्ध बतलाओ जिसका उत्तर पांच बार प्रश्नोत्तर होने पर श्री मौलवी महाशयगण ने इसके अतिरिक्त कुछ न दिया कि यह विषय दोनों से सम्बन्ध रखता है। इसलिए आर्य समाज को ही उत्तर देना चाहिए। आर्य समाज की ओर से कहा गया कि यद्यपि यह विषय दोनों से सम्बन्ध रखता है और इलहाम' के लक्षण में दोनों ओर से मनुष्यों का भिन्न भिन्न सिद्धान्त देखा जाता है, अतएव सिद्ध करने के प्रथम लक्षण का एक होना आवश्यक है जिससे तदनुसार उभयपक्ष अपने सिद्धान्त को सिद्ध करे। परन्तु मौलवी साहब जानते थे कि लक्षण करते ही प्रथम तो अयुक्त होने से विद्वत्ता की कलई खुल जाएगी। दूसरे यदि लक्षण ठीक कर दें तो कुरान "इलहामी" सिद्ध होना असम्भव है। प्रयोजन यह है कि ६ दिन तक बराबर शास्त्रार्थ हुआ, परन्तु मौलवी साहबों ने 'इलहाम' का लक्षण किया ही नहीं और आर्य समाज ने जो 'इलहाम' का लक्षण किया था वह भी असत्य नहीं बतलाया।

यद्यपि शास्त्रार्थ से प्रथम सब हिन्दुओं को यह कहकर कि आर्य समाज से शास्त्रार्थ है, हिन्दुओं के वेदों से कोई प्रयोजन नहीं—बहकाने का यत्न किया, परन्तु दो दिन में हिन्दुओं को उनकी चाल प्रतीत हो गई और अनपढ़ मारवाड़ियों के अतिरिक्त सब आर्य समाज के सहायक हो गए। मुसलमानों की ओर से श्री १०८ स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी थे। मौलवी साहब की ओर से बहुत से ऐसे कृत्य हुए जिनसे शास्त्रार्थ रुक जावे; परन्तु पुलिस के उत्तम प्रबन्ध और आर्य समाज की ओर से शान्ति होने से शास्त्रार्थ लिखित हुआ है। इसलिए सर्वसाधारण के दृष्टिगत हो जाएगा। अधिक लेख अनावश्यक है।

पुनर्जन्म पर मौलाना साहब मंत्र मुग्ध कर दिये

मुसलमानों के साथ "पुनर्जन्म" पर एक जगह शास्त्रार्थ करते हुए स्वामी जी ने अपने पूर्व पक्ष में कहा कि मौलाना साहब फरमाइये कि कयामत के बाद कब्रिस्तानों से मुर्दे इसी दफन शुदा जिस्म से उठेंगे या कोई और नया जिस्म होगा।

मौलाना कह तो गए कि "और नया जिस्म होगा" और ये तो कैसे कहते कि वह फानी जिस्म रहेगा।

स्वामी जी बोले बस, उसी नये जिस्म का मिलना ही तनासुख (पुनर्जन्म) कहलाता है।

स्वामी जी का यह कहना था कि पक्ष-विपक्ष दोनों ही दलों पर समान रूप से गजब का असर पड़ा। असर क्या पड़ा—समझिये जादू हो गया। लोग भौंचक्के रह गए कि इस मंतकी (तर्क शास्त्री) पुतले ने कितने सेकिण्डों में अदृष्ट से विपक्ष पर मन्त्र मार दिया। मौलाना साहिबान को बगलें झांकने के सिवाय कुछ न बन पड़ा। स्वामी जी तो अपने उसी स्वाभाविक मन्द हास्यमयी प्रतिमा की छवि दिखाते रहे पर विपक्षी दल में तो सन्नाटा छा गया।

पेशावर में पं० जगत प्रसाद का बिस्तरा गोल

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के सक्युंलर के और स्वामी दर्शनानन्द के बल की परीक्षा

(स्वामी आत्मानन्द जी महाराज लिखित वृत्त)

स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज रावलपिण्डी जाते हुए यह कहकर चले थे कि "मैं पंजाब जा रहा हूं, मुझे जो रोकना चाहता है रोके।" रावलपिण्डी जाकर आपने आर्य समाज के पास ही एक मास्टर जी का मकान किराये पर ले लिया और प्रेस लगा लिया। अपना अखबार चालू कर दिया। लाला वजीरचन्द जी आदि आर्य पुरुष नित्य ही उनके दर्शन करने आने लगे। कुछ दिनों के पश्चात् सनातन धर्म के एक विद्वान् जिनका कि नाम जगत प्रसाद था, पेशावर आ पहुंचे और आर्य समाज को शास्त्रार्थ के लिए चेलेंज दे दिया। जगतप्रसाद के व्याख्यान नित्यप्रति पेशावर में होने लगे। आर्य समाज के लोगों ने यह सुन रक्खा था कि शास्त्रार्थ महारथी स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज रावलपिण्डी आकर ठहरे हुए हैं। तीन चार आर्य पुरुष स्वामी जी को लेने के लिए रावलपिण्डी आ गए।

स्वामी जी को उन्होंने कहा—"महाराज जगत प्रसाद ने बड़ा तंग किया हुआ है। अतः कृपया आप उसके साथ शास्त्रार्थ के लिए चलिए।" स्वामी जी ने कहा, "भाई मेरे साथ तो सभा के लोग विरोध कर रहे हैं, तब मैं आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ के लिए कैसे चलूं।" उन लोगों ने कहा "अब तो आप आर्य समाज के यश और अपयश को ध्यान में रख के हमारे साथ चलिए। विरोध के बारे में बाद में निश्चय कर लेंगे।"

जगत प्रसाद कोई भारी विद्वान् न था, भिन्न-भिन्न दर्शनों के दो चार पृष्ठ उसने याद किये हुए थे। भाषण की शैली अच्छी थी, इसलिए उन्हीं सब याद किये हुए पाठ को जनता को सुनाकर वादी को चुप कराने का ढंग जानता था। जगत प्रसाद के साथ हरप्रकाश नाम के एक विद्वान् थे जो उनकी तरफ से लिखा पढ़ी का सब काम किया करते थे। जगत प्रसाद स्वयं संस्कृत पढ़ने-लिखने में निपुण न थे। स्वामी जी ने शास्त्रार्थ में स्वयं खड़े होकर कहा—"जगत प्रसाद जी ने जो भाषण दिया है क्या सभासदों में से किसी एक ने भी उसको समझा है।" इतना कहने के बाद स्वामी जी ने थोड़ा भाषण संस्कृत में आप भी दिया और कहा कि क्या आप लोगों में से किसी ने मेरा भाषण भी समझा है। यदि आप लोग मेरे भाषण को नहीं समझ सके तो जगत प्रसाद जी के भाषण को भी नहीं समझ सके होंगे। तो आप बतायें कि यह शास्त्रार्थ संस्कृत में चले या हिन्दी में? सब ओर से ध्वनि सुनाई दी "हिन्दी में, हिन्दी में।" स्वामी जी ने कहा—"अच्छा फिर शास्त्रार्थ कल होगा। उस समय, समय पूरा हो गया था अतः सब लोग उठकर चले गए।"

सायंकाल स्वामी जी ने हरप्रकाश जी को अपने मकान पर बुलवाया और उनसे बातचीत की तथा कहा "आप संस्कृत के विद्वान् हैं। जगत प्रसाद तो संस्कृत का ज्ञाता नहीं, आप उनके साथ कैसे चले आए।" उन्होंने कहा—"महाराज मैं पैसे की आवश्यकता से इनके साथ चला आया हूं।" स्वामी जी ने कहा—"यह कमी तो आपकी हम पूरी कर देते हैं। हम एक गुरुकुल खोल रहे हैं। हम आपको उस गुरुकुल में मुख्याध्यापक का पद दे देंगे।" स्वामी जी ने उसी समय जो रावलपिण्डी जाने वाली गाड़ी थी उसी में बैठाकर हरप्रकाश जी को रावलपिण्डी भेज दिया। हरप्रकाश जी के चले जाने की बात सुनकर जगतप्रसाद जी भी रात ही रात में अपना बिस्तर गोल कर चले गए।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज वृक्षों में जीव नहीं मानते थे। इस विषय पर उनके कई ट्रेक्ट हैं–

आर्य जगत् तब भ्रम में था कि वास्तविकता क्या है। मैं (लेखक) १९०८ ई० के श्रावण में भरतपुर (राजस्थान) अपने मित्र पं० रघुनाथ जी शर्मा के यहां ठहरा हुआ था। उन्हीं दिनों श्री पं० गणपति शर्मा आर्य समाज मन्दिर में दीर्घ समय तक विराजमान थे तब मैं अधिक दिनों तक उनके सत्संग में वहां रहा था, पं० जी से मेरा स्नेह बढ़ गया, वे नित्य नई विनोद क्रीड़ाएं करते और हंसाते रहते थे।

कभी-कभी उनके आत्मज्ञान सम्बन्धी व्याख्यान वहां के बड़े-बड़े स्थानों और राजकीय सरदारों की सभा में होते थे—मैं व्याख्यानों से मुग्ध हुआ। मन ही मन सोचता था—कि क्या यह छोटा-सा तत्ववेत्ता पुतला वही है, जो दिन भर हमारे साथ बालकों की तरह खेलता है। अद्वैतवाद की तो ऐसी खबर लेते थे कि श्रोता अपने को "ब्रह्म" तो क्या समझें—क्षुद्र जीव समझने में भी सकुचाते थे।

इन्हीं दिनों एक क्रीड़ा विनोद करते हुए मंदहास्य मुद्रा में मुझ से बोले "एक मजे की बात कहूं।" मैंने कहा कहिए "पण्डित जी" देखो ज्वालापुर महाविद्यालय के उत्सव पर स्वामी से शास्त्रार्थ करूं, विनोद भी रहेगा शास्त्र चर्चा भी होगी और बड़ा लाभ होगा यह कि महाविद्यालय ज्वालापुर का वार्षिकोत्सव खूब सफल रहेगा। मैं उनके इस विनोद को सुन कुछ थोड़ा असमञ्जस में मुस्करा दिया। मैंने कहा कि यह है तो बेशक मजे की बात। स्वामी दर्शनानन्द के प्रेम भक्ति और आत्मीयता के भावों के कारण वे "स्वामी" कह कर ही उनकी चर्चा करते थे। वह उनका मनोरथ निदान ४ वर्ष बाद सन् १९१२ ई० में सिद्ध होकर ही रहा। पाठक आगे शास्त्रार्थ का रसपूर्ण दृश्य साहित्याचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा के आलेख में पढ़िए।

"स्थावर में जीव-विषयक विचार

वादी—श्री पं० गणपति जी शर्मा। प्रतिवादी—श्री स्वामी दर्शनानन्द जी।

वादी पक्ष—वृक्षों में "अभिमानी जीव" है। प्रतिवादी पक्ष—वृक्षों में "अभिमानी जीव" नहीं है।

८ अप्रैल १९१२ को पूर्वाह्न के समय सवा दस बजे से आरम्भ होकर सवा ग्यारह बजे (एक घण्टा) तक होकर समाप्त हुआ। वादी और प्रतिवादी के बोलने का समय पांच-पांच मिनट। सामयिक प्रधान श्री पं० पद्मसिंह जी शर्मा सम्पादक "भारतोदय"।

अथामुखम्

श्री पं० गणपति शर्मा जी का यह अन्तिम और अपूर्व शास्त्रार्थ, जिन महाशयों ने स्वयं सुना था, वे तो अब तक उस समय को याद करके सिर धुन रहे हैं और यह सोचकर कि अब ऐसा अवसर फिर इस जन्म में नहीं मिलेगा, अपने को धन्य समझ रहे हैं कि सौभाग्य से ही यह सुयोग हमें प्राप्त हो गया। आर्य समाज के दो अप्रतिम तार्किक, निरुपम-वक्ता, अद्वितीय शास्त्रार्थ कर्त्ता, अलौकिक प्रतिभाशाली और अपने विषय के अपूर्व-विद्वान् तथा प्रतिवादी, भयंकर वाग्भट्ट उपदेशक प्रवरों के संवाद-संगर देखने और श्रवण सुधावर्षी वाग्विलास सुनने का अलभ्य लाभ मिल गया।

अहा सचमुच ही वह कैसा विचित्र समय और पवित्र अवसर था, महाविद्यालय की सुरम्य भूमि के समीप विशाल बाग में कुदरती शामियाने के नीचे हजारों मनुष्यों का समाज जुटा है, एक ओर पीत वस्त्र-धारी ब्रह्मचारी समूह, पंक्ति बांधे शान्त भाव से, पर उत्कर्ष हुआ, अपने आसन पर आसीन है, दूसरी ओर गैरिकरागरंजित वेष विभूषित पर विराग सम्पन्न अनेक सम्प्रदायों के साधु महात्माजन जिन जीवन्मुक्तायमानों को विवादसंगर दिदृक्षा और शास्त्रार्थ शुश्रूषा खींच लाई है, आसन मारे विराजमान हैं।

शेष श्रोतृ मण्डल फर्श पर परा बांधे डटा हुआ है, कोई नोट लेने के लिए चाकू निकाले पेंसिल घड़

रहा है, कोई कागज के दस्ते संभाल रहा है कोई पाकिट बुक के पन्ने पलट रहा है, कोई किसी से कागज, पेंसिल मांग रहा है. कोई बार-बार घड़ी निकाल कर देख रहा है, कोई वक्त पूछ रहा है, शास्त्रार्थ शुरू होने में अभी कुछ देर है, पर श्रोता अभी से उतावले बेसब्रे हो रहे हैं, उन्हें एक-एक मिनट भारी हो रहा है, बैठे-बैठे गर्दन उठाकर देख रहे हैं कि पण्डित जी और स्वामी जी आये तो नहीं।

निदान जिस घड़ी का इन्तजार था, वह आई और सुनने वालों की दिली कशिश, इन्तजार के बढ़े हुए तार में खींच कर वाग्भट्ट वीरों की जुगल जोड़ी को सभा मण्डप में ले आई।

ठीक निर्दिष्ट समय पर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ, और जिस प्रकार हुआ, वह आगे देखिए। परन्तु प्रिय पाठक इन शब्दों में वह अलौकिक आनन्द कहाँ है? जो उस समय वक्ताओं के धारा प्रवाह मधुर भाषणों से टपक रहा था। यह समझिए कि सुधारस-निष्यन्दी, भाषणानंद बड़े प्रबल वेग से बह रहा था, जिसमें गोते खाते हुए, श्रोतृजन भी साथ-साथ बहे जा रहे थे, कई महाशय जो इस समृद्धवेगनद को कागज पेन्सिल के छोटे-छोटे पात्रों में भरना चाहते थे, देखते रह गये। क्योंकि दरया को कूजे में बन्द करना हर एक का काम नहीं है।

हमारे मित्र पं० रलाराम जी की लेखन पटुता और आशुग्राहिता प्रशंसनीय है कि उन्होंने उस प्रबल प्रवाह में भी इन रले हुए मोतियों को रोल कर इकट्ठा कर लिया और उनसे यह सुन्दर कण्ठा बना कर प्रस्तुत कर दिया, जो प्रिय पाठकों के कमनीय कण्ठ में समर्पित है।

इस शास्त्रार्थ-मौक्तिक माला-निर्माण का सारा श्रेय पण्डित रलाराम जी को ही है, इसके लिए पाठकों को उनका ही कृतज्ञ होना चाहिए।

"भारतोदय" अपने प्रिय पण्डित जी की इस अन्तिम यादगार को सुरक्षित दशा में सर्व साधारण के सम्मुख रख कर बड़ा हर्ष अनुभव कर रहा है।

शास्त्रार्थ की पाण्डुलिपि नोटों के आधार पर, पण्डित जी के सामने ही प्रस्तुत हो चुकी थी। जब अन्तिम बार वह पंजाब जा रहे थे, निवेदन किया कि महाराज इसे सुन कर तसदीक कर दीजिए, कुछ भाग सुना और कहा कि अब की बार आकर सब सुनेंगे, पर अफसोस ऐसे गए कि अब तक न लौटे।

विचार था कि वादी प्रतिवादी, दोनों महोदयों को एक बार सुना कर शास्त्रार्थ प्रकाशित किया जाय, किन्तु दुःख है कि दुर्दैव ने यह इरादा पूरा न होने दिया। ईश्वर की कृपा है कि "प्रतिवादी" अभी मौजूद है, पर हाय, "वादी" को कहां से लायें? अब तो यह कहने का मौका भी नहीं रहा।

"लोग कुछ पूछने को आये हैं।
अगले-मैयत जनाजा ठहरायें।"

ओह, संसार भी कैसा संसरणशाली और परिवर्तनशील है। कुछ ठिकाना है, यारो, कल की बात है कि हम तुम सब अपूर्व शास्त्रार्थ नद के प्रवाह में गोते लगा रहे थे, वाद प्रतिवाद की जबरदस्त लहरें कभी इस किनारे और कभी उस किनारे उठा-उठा कर फेंक रही थीं, किसी एक तट पर जम कर बैठना थोड़ी देर के लिए भी मुश्किल था, पर जिस ओर जाते अपूर्व आनन्द पाते थे। और यही चाहते थे कि इसी प्रकार हर्ष पयोधि में हिलोरें लेते रहें।

आह! वह समय अब तक आंखों में फिर रहा है, वक्ताओं की वह स्निग्ध गम्भीर ध्वनि कानों में गूंज रही है, वह दिव्य दृश्य हृदय पर अबलों अंकित है, जिसे स्मृति की आंखें अच्छी तरह देख रही हैं, पर देखो तो कुछ भी नहीं।

"ख्वाब था, जो कुछ कि देखा जो सुना अफसाना था।"

प्रत्यक्ष परोक्ष और वर्तमान, अतीत हो गया, साक्षात अनुभव का विषय स्मृति मात्र रह गया जिसे आंखों से देख और कानों से सुन रहे थे, वह सिर्फ सोचने और याद करने के लायक रह गया। आह ऐसा समय क्या कभी इस जन्म में फिर देखने को मिलेगा। उस शान्त पावन मूर्ति के फिर भी दर्शन हो सकेंगे। इन कानों से वे विचित्र बातें फिर सुन सकेंगे।

किसी ने सच कहा है कि—

मनुष्य अपने चित्त-पट पर नाना भाव और अनेक विचार रूपी रंगों से मनोरथ चित्र बना कर तैयार करता है, और विधि, एक नादान बच्चे की तरह हाथ फेर कर उसे मेट देता है?

"मेरे मन कुछ और है कर्ता के मन और" आगामी वर्ष के लिए जिन-जिन महोदयों के साथ जिस-जिस विषय पर शास्त्रार्थ और संवाद करने का प्रोग्राम पण्डित जी बना रहे थे, वह यों ही रह गया। सुनने वालों के दिल की दिल ही में रह गई, अफसोस।

"यह आरजू थी, तुझे गुलके रूबरू करते,
हम और बुलबुल बेताब गुफ्तगू करते"

होने को अब भी सब कुछ होगा, उत्सव होंगे, व्याख्यान होंगे और शास्त्रार्थ भी होगा, सभा जुटेगी, श्रोता आवेंगे, कहने वाले कहेंगे' सुनने वाले सुनेंगे, वक्ता की वाणी से निकले हुए शब्द श्रोताओं के इस कान से होकर उसमें निकल जायेंगे, पल्ला झाड़" कथा सुन कर उठ खड़ होंगे।

कहने सुनने की गर्म बाजारी है,
मुश्कल है मगर असर पराए दिल में।
ऐसा सुनिये कि कहने वाला उभरे,
ऐसी कहिए कि बैठ जाए दिल में।

दिल में बैठने वाली बात कहने वाला, मिलना मुश्किल है अनेक शास्त्रार्थ देखे, और बहुतेरी वक्ताएं सुनीं पर ऐसा प्रतिभाशाली आह्लान और मधुर भाषी, शास्त्रीय विषयों का सुवक्ता विचित्र व्याख्याता हमारे देखने में तो आया नहीं। आशा भी नहीं है।

"मानो न अलीक भूमिकम्प ही से कांपता है।
विद्युतादि वेगों से पहाड़ हिलता नहीं।
भानु का प्रकाश भव्य कारण विकास का है।
तारों की चमक पाय "पद्म" खिलता नहीं।
कंकर रबीली कड़ी रेती रेत डालती है।
क्षुद्र छुरी छैनियों से हीर छिलता नहीं।
हाय गणपति की अनुठी वक्तता के बिना।
अन्य उपदेश सुने स्वाद मिलता नहीं।" —सम्पादक

उपसंहार

(यह शास्त्रार्थ ६० पृष्ठों पर पृथक छपा है) स्वामी जी के भाषण के अन्तिम प्रतिवाद के अनन्तर ही एक ओर से झटपट यह शब्द सुनाई दिए कि अब शास्त्रार्थ बन्द हो जाना चाहिए, बहुत सी खलकत

कांगड़ी से यहां लौट कर आई है और स्वामी जी के व्याख्यान को सुनने के लिए समुत्कण्ठित है, बहुत हां हां, ना ना", के कोलाहल के पश्चात् निश्चित हुआ कि अब की बार पं० गणपति शर्मा जी बोल लें, उसके पश्चात् (चूंकि भाषण का अन्त्यावसर स्वामी जी का था) यदि स्वामी जी चाहें तो उत्तर देकर अपना व्याख्यान आरम्भ कर दें। परन्तु स्वामी जी ने पं० जी के पश्चात् व्याख्यान ही दिया। यह इसलिए नहीं कि उत्तर नहीं दे सकते थे, प्रत्युत इस लिए कि स्वामी जी का व्याख्यान सुनने के लिए लोग बहुत उन्मत्तक हो रहे थे।

शास्त्रार्थ को भावी वर्ष पर बड़े समारोह से करने के लिए मतलबी किया। परन्तु शोक कि श्री पं० जी दागे – मुफारकत दे गए। नहीं तो आगामी वर्ष श्री पं० आर्य मुनि जी आदि के साथ भी उनके शास्त्रार्थ होते, जो कि बड़े मारके के होते। परन्तु शोक कि अब वह तर्क चूड़ामणि व्याख्यान वाचस्पति स्वर्ग में बुध और बृहस्पति की प्रतिमा परीक्षण के लिए इस अधम मानव लोक को छोड़ कर सिधार गए।

पं० गणपति शर्मा ने स्वपक्ष के प्रमाण पुरस्सर उपसंहार के पश्चात् हाथ जोड़ कर बड़े आदर-भाव से स्वामी जी महाराज की स्तुति तथा सभा का धन्यवाद कर, श्री पं० जी मौन हुए और ऐसे मौन हुए कि अब ऐसे शास्त्रार्थ और व्याख्यान स्वप्न हो गए।

इसके पश्चात् श्री स्वामी दर्शनानन्द जी का व्याख्यान आरम्भ हुआ, जिसके आदि शब्द यह थे—"आर्य लोगों का शास्त्रों को न समझना यह साबित करता है कि आर्य लोग स्वाध्याय नहीं करते···इत्यादि।" वह एक सारस्वत महानद था—कि अनेक युक्ति प्रमाणाख्यानों की तरंगों से समृद्ध वेग बह रहा था। डेढ़ घन्टा तक व्याख्यान देकर स्वामी जी रात्रि की ११ बजे की गाड़ी से रावलपिण्डी को चले गए—क्योंकि गुरुकुल पोठोहार का वार्षिकोत्सव था।

देह त्याग से १० मास पूर्व जैन-शास्त्रार्थ : जैन-जन वैदिक बने

स्वामी जी महाराज कहीं भी हों—शास्त्रार्थों के प्रसंग पर विशेषकर सभी प्रान्तों से तार चिट्ठियों के आह्वान मिलते रहते थे। वे अजमेर शास्त्रार्थ में कैसे पहुंचे, इस वृतान्त और शास्त्रार्थ को वैदिक यंत्रालय में जून सन् १९१२ ई० में छपे—"अजमेर शास्त्रार्थ" नामक २२ पृष्ठ के ट्रैक्ट में पढ़िए। उसकी भूमिका और उपसंहार की पंक्तियां निम्न प्रकार हैं। जैनों की ओर से वक्ता श्री पं० गोपालदास बरैया जी थे।

अजमेर नगर में यह शास्त्रार्थ गोदों की नसियां नामक स्थान पर श्री सेठ ताराचन्द जी दिगम्बरी के सभापतित्व में अधूरा-सा सम्पन्न हुआ था। हमारे जैनी भाइयों ने इस उपाय से पूर्ण सफलता प्राप्त होती न देख अपनी ख्याति बढ़ाने तथा अपने भ्रम मूलक सिद्धान्तों के प्रचारार्थ अब कुछ दिनों से एक दूसरे मार्ग का आवलम्बन किया है। कुछ समय से इटावा नगर में एक 'जैनतत्व प्रकाशिनी" नामक सभा का जन्म हुआ है। इस सभा ने ठीक उस ही प्रकार जैसे कि एक कुश्तीबाज प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए किसी बड़े पहलवान से कुश्ती मांगे, वैदिक सिद्धान्तों पर प्रहार कर आर्य समाज से छेड़छाड़ करने में अपना कल्याण समझा है। इस सभा ने आर्य धर्म पर आक्षेप करते हुए कई ट्रैक्ट निकाले हैं, परन्तु जिस प्रकार पहलवान लोग नये खिलाड़ियों की ढिठाई की ओर ध्यान नहीं देते इस ही प्रकार आर्य विद्वान् जैनियों के इस कृत्य को उपेक्षा की दृष्टि से देखते रहे। जब रोग बहुत बढ़ता हुआ दीख पड़ा तब अंकुश मार देने के समान श्रीमान स्वामी दर्शनानन्द जी ने जैन विद्वानों से २० प्रश्न किये। इन प्रश्नों के उत्तर जैनियों की ओर से इटावे की जैनतत्व प्रकाशिनी सभा के सभ्य श्री दिग्विजयसिंह जी ने दिये। इनके इस हौंसले को देख स्थानीय जैन बालकों ने भी एक "जैनकुमार सभा" नामक संस्था स्थापित कर जैनतत्व प्रकाशिनी सभा इटावा को अजमेर नगर में बुलाया और "आर्य समाज से शास्त्रार्थ करेंगे" इस ध्वनि से आकाश को गुंजायमान कर दिया।

दैवयोग से इन्दौर जाते हुए श्रीमान् स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज का भी अजमेर नगर में ठहरना हो गया। सामाजिक पुरुषों ने विभिश्वरसिंह जी के दिये हुए उत्तर स्वामी जी को दृष्टिगोचर कराये। स्वामी जी ने इन उत्तरों की आलोचना तथा "जैनमत समीक्षा" नामक एक पुस्तक प्रकाशित कर एक महीने की सूचना पर शास्त्रार्थ करने के निमित्त घोषणा पत्र प्रकाशित कर दिया। जैन विद्वानों ने "ईश्वर सृष्टि का कर्त्ता नहीं है" इस विषय पर व्याख्यान दिये। जिससे विचारशील श्रोताओं के सिद्धान्तों में गड़बड़ होने लगी और अनेक भद्र पुरुष जिज्ञासु भाव से श्री स्वामी जी महाराज के पास अपनी शंकाओं को मिटाने के निमित्त आने लगे। आर्य समाज धर्म जिज्ञासुओं की सेवा करने के लिए सर्वदा तत्पर रहता है। निदान आर्य समाज के मंत्री जी महोदय ने व्याख्यानों का प्रबन्ध कर जैनियों की युक्तियों का खण्डन कराना आरम्भ कर दिया और आलोचना प्रत्यालोचना के दोनों ओर से विज्ञापन निकलने लगे। दोनों ओर के व्याख्यानों में धर्म जिज्ञासु सहस्रों की संख्या में उपस्थित होने लगे। हमारे जैनी भाइयों ने शतशः जैनियों को आर्य समाज में आते और शंकित चित्त होते देखकर चाल से काम लेना आरम्भ किया। तारीख २९ जून १९१२ की रात को साढ़े ११ बजे जब उनके यहां व्याख्यान समाप्त हुआ तब उन्होंने एक विज्ञापन प्रकाशित किया कि एक ही दो रोज में शास्त्रार्थ कर लिया जावे। यदि आर्य समाज तैयार नहीं तो उसकी हार समझी जाएगी। जैनी भाइयों ने समझा था कि २९ तारीख तो खतम हो ही चुकी, ३० तारीख का रविवार है कहीं नोटिस न छप सकेगा, पहिली जुलाई को हम चले ही जावेंगे। बस शास्त्रार्थ से सहज में पीछा छूट जाएगा और आर्य समाज की हार की हवाइयां उड़ जावेंगी, परन्तु यहां क्या था, वैदिक प्रेस के कार्य तत्पर कर्मचारियों ने प्रातःकाल होते ही ७ बजे विज्ञापन निकाल दिया कि "शास्त्रार्थ मंजूर है, समय, स्थान, विषय, मध्यस्थ आदि का प्रबन्ध किया जावे।" जैनी भाइयों ने बड़ी फुरती की और दो घंटे बाद अर्थात् साढ़े नौ बजे चिट्ठी भेजकर सूचना दे दी कि आज ही दोपहर दो बजे शास्त्रार्थ के लिए गोदो की नसियां में आ जाइये। यद्यपि स्थान दूर था, दोपहर की धूप भी कड़ी थी और सहस्रों मनुष्यों का ऐसी गर्मी के समय एकत्र होना चिन्ता की बात थी, परंतु स्वामी जी ने शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर ही लिया और १.३० बजे ही वहां जा विराजमान हुए। जब दो बजने में ५ मिनट रह गये तब श्री स्वामी जी को नियमित स्थान पर बैठाया गया। शास्त्रार्थ मौखिक हो अथवा लेखबद्ध इस विवाद पर ही २.३० बज गये, बार-बार आग्रह करने पर भी हमारे जैनी भाई व उनके पण्डित जी महाराज ने लेखबद्ध शास्त्रार्थ करना स्वीकार नहीं किया। तब स्वामी जी ने समय को टलता हुआ देख मौखिक शास्त्रार्थ करना ही स्वीकार कर लिया और एक जैनी महाशय ही के सभापतित्व में शास्त्रार्थ करना आरम्भ कर दिया।

शास्त्रार्थ में दोनों ओर से युक्तिवाद चलता रहा पर नियत किया हुआ समय समाप्त होने पर आ गया इसलिए, तब सभापति ने धन्यवाद देते हुए यह कहा कि "पण्डित जी" कहते हैं कि मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं हुआ। यह बात सभा का जैन धर्मावलम्बी सभापति होने का परिणाम है। पाठक महाशय विचार कर सकेंगे कि वादी की कौन-सी युक्ति शेष रह गई जिसका उत्तर नहीं मिला। एक-एक प्रश्न का उत्तर दो-दो, तीन-तीन बार दिया गया तिस पर भी हर दफे यही कहा गया कि "भाइयों, मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं मिला" इसका तो इलाज ही नहीं "मुलमस्तीति वक्तव्यं"। जुड़ना और अलग होना यह हरकत (क्रिया) के दो फल हैं, संयोग उसका ही होगा जिसका वियोग हुआ हो और वियोग उसका अवश्य होगा जिसका संयोग हुआ है, यह साधारण बात भी समझ में न आवे तो यही कहना पड़ेगा कि "सूर्यस्य किं दूषणम्।"

शास्त्रार्थ का परिणाम, आद्य शंकराचार्य की याद : स्वामी जी दिल्ली से लौटे

इस शास्त्रार्थ का परिणाम यह हुआ कि प० दुर्गादत्त जी शास्त्री तथा प० शम्भूदयाल जी ने दूसरे

ही दिन जैन धर्म का परित्याग कर दिया। इससे हमारी तत्वप्रकाशिनी सभा तथा साधारणतया सब जैन भाइयों का खिसिआनपन यहां तक बढ़ा कि जिसका वर्णन बन नहीं पड़ता। शायद स्वामी शंकराचार्य जी के पश्चात् जैनी भाइयों को इतना उदासीन बनाने वाला यह पहिला ही दिवस था।

स्वामी जी ने शास्त्रार्थ जारी रखने के लिए जैन पण्डितों से बार-बार अनुरोध किया, परन्तु उन्होंने यह कह दिया कि आप सन्यासी हैं हम गृहस्थ हैं। हमें पेट की भी फिकर है। शास्त्रार्थ होता हुआ जब नहीं देखा तो स्वामी जी महाराज एक दिन ठहर कर पंजाब चले गये, परन्तु जिस कारण से कि हमारे जैनी भाई खिसिया रहे थे उन्होंने मैदान खाली देख फिर शास्त्रार्थ का चेलेंज दे दिया। दैव योग से सिकन्दराबाद गुरुकुल के अध्यापक पं० श्री यज्ञदत्त जी शास्त्री यहां पधार गये। उन्होंने निर्भयता से जैन सभा में जाकर शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया। रात्रि के डेढ़ बजे तक संस्कृत में शास्त्रार्थ करते रहे और प्रातःकाल तक शास्त्रार्थ करने की सन्नद्धता दिखाई, परन्तु "कर्म द्रव्य है या गुण द्रव्य है तो उसका गुण क्या, सुख व दुःख दो विरुद्ध गुण एक द्रव्य के नहीं हो सकते, यदि गुण है तो किस द्रव्य का।" इस प्रश्न पर जब जैन पण्डित निरुत्तर हो गये तब सभापति ने शास्त्रार्थ बन्द कर दिया। इससे जैनियों का खिसिआनपन और भी बढ़ गया। फिर लेखबद्ध शास्त्रार्थ के लिये नोटिस बाजी आरम्भ हुई। स्वामी दर्शनानन्द जी पंजाब जाते-जाते दिल्ली से ही लौटा लिये गए। जैनी भाइयों के खिसिआनपन को देख सर्वसाधारण की भीड़भाड़ में शास्त्रार्थ करना मुनासिब न समझा गया, परन्तु जैनी भाई सर्वसाधारण की भीड़-भाड़ में ही शास्त्रार्थ में ऊधम-दंगा में ही शास्त्रार्थ करने का आग्रह करते रहे। सर्वसाधारण की भीड़-भाड़ रोकने के लिये जैन नेताओं से प्रबन्ध का भार अपने ऊपर लेने के लिए कहा गया, पर उन्होंने जिम्मेवारी स्वीकार न की।

आखिरकार तारीख ११ जुलाई सन् १९१२ ई० को शास्त्रार्थ के नियमादि निश्चित करने के लिये दोनों ओर से एक कमेटी नियत की गई, जिसमें आर्यों की ओर से श्रीयुत बा० गौरीशंकर जी बैरिस्टर और श्री बा० मिट्ठनलाल जी बी. ए. एल. एल. बी. वकील तथा जैनी भाइयों की ओर से श्रीयुत सेठ ताराचन्द जी रईस श्रीयुत बा० प्यारेलाल जी रईस ललोदाबाद और श्रीयुत सेठ चौथमल जी, श्रीयुत सेठ पन्नालाल जी मैंसा अजमेर थे। उक्त कमेटी ने ११ बजे दिन के श्रीमान् बा० गौरीशंकर जी बैरिस्टर की कोठी पर एकत्रित हो सर्वसम्मति से यह निश्चय किया कि 'शास्त्रार्थ लेखबद्ध केवल पत्र द्वारा हो और दोनों पक्ष से अब इस शास्त्रार्थ के विषय में विज्ञापन न छापे जावें।" तिस पर भी ११ जुलाई १९१२ ई० को जैनियों को ओर से २० प्रश्न इस आशय से छपवा कर शहर में बटवाये कि हम (इटावा निवासी) एक दो दिन पश्चात् चले ही जावेंगे और एक दो दिन में २० प्रश्नों का उत्तर आर्य समाजी कदापि नहीं दे सकेंगे, परन्तु ज्यों ही इनका प्रश्न पत्र मिला त्यों ही स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज ने प्रश्नों का उत्तर लिखना आरम्भ कर दिया और उसी दिन अर्थात् ११ जुलाई को ही २४ पृष्ठ की पुस्तक छपवाकर प्रकाशित कर दी, जिसमें जैनियों के २० प्रश्नों के उत्तर के अतिरिक्त २० प्रश्न स्वामी जी ने अपनी ओर से जैनियों पर कर दिए जिनका उत्तर आज २० जुलाई तक भी नहीं आया है।

कमेटी के नियमानुसार जैनतत्व प्रकाशिनी सभा इटावा के साथ पत्र द्वारा शास्त्रार्थ किया जा रहा है, जिसको समय-समय पर दोनों पक्ष अपने-अपने समाचार पत्रों में प्रकाशित करते रहेंगे। इति—

जैन-शास्त्रार्थ के बाद

इस "जैन शास्त्रार्थ" के समय स्वामी जी अस्वस्थ थे और यह अस्वस्थता एक प्रकार से देहत्याग तक बढ़ती ही गई थी। इन्हीं दिनों में (जून सन् १९१२) में स्वामी जी की ही जन्म भूमि जगरावां में

उनके विशेष प्रिय महारथी विद्वत् शिरोमणि श्री पं० गणपति शर्मा का स्वर्गवास हुआ था। स्वामी जी महाराज को उनके रोग के वृतान्तों से भी चिन्ता मग्न होना था। देखिए कि मस्तिष्क सम्बन्धी कितना भार इस समय स्वामी जी महाराज पर आरूढ़ था। यहां हमने स्वामी जी महाराज के किए हुए शास्त्रार्थों का दिग्दर्शन कराया है। अब हम इस प्रकरण पर अपनी लेखनी को विश्राम देते हैं।

आर्य समाज का अन्तर्द्वन्द्वः चतुरंगिणी के प्रधान सेनापति का रणकौशल आर्य प्रतिनिधि सभाओं के सबर्युलर

विपदि धैर्यं मथाभ्युदये क्षमा,
सदसि वाक् पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभि रुचि र्व्यसनम् श्रुतौ,
प्रकृति सिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥ (राजर्षि भर्तृहरि)

अब हम आर्य जगत् की कुछ अप्रिय घट-घटनाओं का उल्लेख करेंगे, जो न चाहते हुए भी हमें उसी संशुद्धि के उद्देश्य से इस इतिहास में लिखनी पड़ रही हैं जिस उद्देश्य से कि ऋषि दयानन्द को शिखा-सूत्रधारी अपने ही (हिन्दू) समाज से भिड़ना पड़ा था और जिस प्रकार कि उन्हीं के पद-चिन्हों पर चलने वाले हमारे चरित्र नायक ने अपने (आर्य) परिवार के दोषों की संशुद्धि के लिए अपनी लेखनी उठाई थी। आर्य समाज कान्स्टीट्यूशन देवता के पुजारी सभा शासक "सत्यार्थप्रकाश" की शिक्षा से शून्य थे, इस लिए वे किस प्रकार मूर्खों के बहुमत के बल पर भारत की दुर्भाग्य रूपी फूट के बीज बो रहे थे तथा फूट को फुटबाल का मैच बना कर वैदिक प्रणाली के नाश का कैसा खतरनाक खेल खेल रहे थे। पर ऋषि दयानन्द के उद्देश्य और उनके तपोमय जीवन की अनुभूति जिन हृदयों में थी और है, उन शुद्ध सहृदय पुरुषों के लिए तो वास्तव में यह एक गहरी अन्तर्वेदना ही थी। इस सबका मूल आर्य समाज की स्थूल सम्पत्ति और बड़ी धर्म-निधि के ऊपर तथा तपस्वी वैदिक विद्वानों से भी ऊंचे सिंहासन पर बैठने की लालसा और उन पर हकूमत करने की दूषित मनोवृत्ति थी। स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज ने—

"हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्

यजुर्वेद के अन्तिम अध्याय की इस श्रुति का उच्चारण करते हुए इस दूषित तमोगुणो वृत्ति का जो वर्णन उस समय के प्रचार में अनेकशः मंचों से किया था वह हमारे कानों में अब तक ताजा सा गूंज रहा है क्योंकि हमने स्वयं अपनी श्रवणेन्द्रिय से उस वाक् सुधा का पान किया था। उस समय के आर्य लीडर किस बहाव में बह रहे थे उसका एक खाका दयानन्द भक्त कवि शिरोमणि श्री पं० नाथुराम शर्मा शंकर की उस समय की लिखी हुई इस कविता में पढ़िए जो आर्य पंच की पुकार नामक शीर्षक से और पंचराज का पुरोहि के हस्ताक्षरों से "भारतोदय" के वर्ष ३ अंक ९ माघ शुक्ला संवत १९६८ के अंक में मुद्रित हुई है। हम यहां उनकी सौ पक्तियों में से केवल थोड़ी सी दे रहे हैं—

महाकवि शंकर का व्यंग उद्बोधन

वेदपाठी पीठ के हैं, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं।
शास्तर सारे सुनाना, कोई हम से सीख लो॥
सौ श्लोकों का खुलासा, साठ शब्दों में कहें।
इल्तिसारी आलमावा, कोई हमसे सीख लो॥

मिस्टरों से वैलकम ले, मुनिशयों से मरहबा।
पण्डितों से मान पाना, कोई हम से सीख लो॥
लीडरी चोला लिया है, फाड फुगली प्लीडरी।
लोट लेना वेष बाबा, कोई हमसे सीख लो॥
भोग भोगे, पुत्र पाले, ज्ञान पाया गुरु बने।
पालतू चेले चुगाना, कोई हम से सीख लो॥
आरजी अब्बा बने हैं, फालतू फरजन्द के।
बेवफा बेटा बनाना, कोई हम से सीख लो॥
देख लो देवादि तीनों, के ऋणों से छुट गए।
जीत के बाजे बजाना, कोई हम से सीख लो।
लो लगी है याचना से, ध्यान धन की ओर है।
दानवीरों को रिझाना, कोई हम से सीख लो॥
ग्रन्थ ग्रन्थों को हमारे, मक्त कुछ देंगे नहीं।
चाव औरों को चबाना, कोई हम से सीख लो॥
हिन्दुओं की भांति भाई, पूजना प्रतिमा नहीं।
चित्र-चित्रों पर लुभाना, कोई हम से सीख लो॥
नाम को मानो व्यवस्था वर्ण की गुण कर्म से।
टेक ज्यों की त्यों टिकाना, कोई हमसे सीख लो॥
जो न तातीलें मिलें तो, एक भी उत्सव न हो।
पर्व यज्ञों के बिताना, कोई हमसे सीख लो॥
हो न हो सन्ध्या घरेलू, होम जलसों में करो।
शोर स्वाहा का मचाना कोई हम से सीख लो॥
लो जनेऊ वेद बांचों, दण्ड त्यागो वर बनो।
सांग चौदण्डी सजाना, कोई हम से सीख लो॥
नारियां पूज जड़ों को, पूजने दो चुप रहो।
भीतरी भूलें छिपाना, कोई हम से सीख लो॥
पुत्र हों, दारा न हों तो, बालिका बरनी बरो।
घो बुढ़ापे को पिलाना, कोई हम से सीख लो॥
घी घना फूको चिता में, तेरहीं करते रहो।
दो मतों का मार खाना, कोई हम से सीख लो॥
आमिषाहारी अनाजी, किस लिए न्यारे रहें।
दो समूहों का सटाना, कोई हम से सीख लो॥
छोकड़े क्षुद्राशयों के, भी महाशय हो सकें।
नीचे को ऊंचा चढ़ाना कोई हम से सीख लो॥
तालियां पीटो हमारी, घोषणा घुडकी नहीं।
पंच है पंजे पुजाना, कोई हमसे सीख लो॥
शंकरा अगामी दिनों में, कुछ न बोलेंगे कभी।
मौन का लासा लगाना, कोई हम से सीख लो॥

अब पाठक उन घटनाओं को देखें जो उस समय घटी थीं। गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार खुलने पर स्वामी दर्शनानन्द बड़े सन्तुष्ट हुए थे—वहां आपके व्याख्यान से स्थापना उत्सव को भी बड़ा लाभ पहुंचा था। पर ब्रह्मचारियों पर उनके खर्च का बोझ लाद देने की "सिद्धान्त हानि" से स्वामी जी ने फीस के विरोध में तगड़ी लेखनी पकड़ी। इससे लीडरी के भूखे लोगों में खलबली मच गई थी और एक बार गुरुकुल कांगड़ी ने अपने यहां फीस मुक्ति की घोषणा भी कर दी थी। फिर वर्षों तक उत्तर प्रदेश तथा पंजाब के आर्य नेताओं से स्वामी जी का लेख संग्राम चलता तो रहा पर स्वामी जी की युक्तियों का ठीक उत्तर किसी से न बन पड़ा। हार झक मार कर कांस्टीट्यूशन बिल्ला वालों ने स्वामी जी पर हल्ला बोल दिया और सक्यूंलर के हथियार से मैदान में आ खड़े हुए।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के ठीक जम जाने के पश्चात् आगे कहीं प्रचार का नया पड़ाव आपको अपने स्वभाववश डालना ही था। भाग्य से छींका टूट पड़ा अर्थात् इन्हीं दिनों में पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा ने प्रान्तीय आर्य समाजों के नाम जो सक्यूंलर जारी किया था कि स्वामी दर्शनानन्द जी को व्याख्यान के लिए आर्य समाज का प्लेटफार्म न दिया जाय। उसको लेकर लाहौर का आर्य सामाजिक पत्र "प्रकाश" अन्त्येष्टि संस्कार शीर्षक से छाप कर फूला न समाया। लोकैषणा के हाथी पर सवार महाशयों को मालूम न था कि केसरी की गर्जना से ही उनका हाथी मैदान छोड़ जायेगा। अब क्या था स्वामी जी महाराज ने दो वर्ष के लिए पंजाब में ही डेरा डाल दिया और प्रचार लाहौर से ही प्रारम्भ करके प्रतिद्वन्द्वियों को परीक्षा में डाल दिया। "प्रकाश" लाहौर और गुरुकुल कांगड़ी के "सद्धर्म प्रचारक" समाचार पत्रों ने विरोधी आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। परिणाम स्वरूप गुरुकुल कांगड़ी और महाविद्यालय ज्वालापुर में भी परस्पर स्पर्धा के साथ छेड़-छाड़ हो गई। कुछ दिन बाद साहित्याचार्य श्री पं० पद्मसिंह जी शर्मा के सम्पादकत्व में महाविद्यालय ज्वालापुर से "भारतोदय" मासिक मुख पत्र का उदय हुआ। अब क्या था स्वामी जी के सेनानी भी मैदान में आ खड़े हुए।

"सेनयोरुभयोर्मध्ये रथम् स्थापय मेऽच्युत"

कहे बिना ही अक्षौहिणी चतुष्टय ने अपने रथ आगे बढ़ा दिए। महारथी आचार्य पं० गंगादत्त जी महाराज "धर्मराज" मुख्याध्यापक श्री पं० भीमसेन जी शर्मा "भीम" ने सैन्य शिविर सम्भाल लिया, लवकुश जोड़ी का प्रतिनिधित्व कर रहे थे पार्थ भक्ति से भरे श्री पं० नरदेव जी शास्त्री। वे सेना के पृष्ठ भाग पर बौडीगार्ड "अंगरक्षक" के रूप में स्वयं तैनात थे फिर गांडीवधारी साहित्य महारथी पुरुषसिंह पद्मसिंह का पद्मासन से उठ कर जाज्वल्यमान ज्वालापुर रथ पर आरूढ़ होने में क्या विलम्ब था? कांगड़ी सेना के महारथियों में कुछ दूर रह कर भी लवपुर आदि से कुछ लोग "प्रकाश" बाण फेंकते हुए शौर्य दिखा रहे थे। एकादश अक्षौहिणी के इस दल ने धर्मयुद्ध में "सद्धर्म प्रचारक" शस्त्र को बहुत पैना करके चलाया, पर आकाश से आते हुए बाणों को काट आकाश में ही कर देने वाले पद्मसिंह की इषुवर्षा ने एक बार भी उनका वार सफल न होने दिया। होता यही है जहां योगेश्वर और पार्थ दो मित्र बैठते हैं वहीं श्री और "विजय" जयमाला लिए खड़ी रहती हैं।" उन दिनों इस भावार्थ वाली एक किंवदन्ती खूब प्रसिद्ध रही थी कि कांगड़ी गुरुकुलोत्सव की सभा में जब कभी पं० पद्मसिंह शर्मा कागज पेन्सिल निकालने को अपनी जेब से हाथ भी लगा बैठे तो विशाल मंच स्थित महारथी समझते थे कि पार्थ का हाथ गांडीव की ओर चला, यह समझ कर उन युद्धपोषक महारथियों के भाषण की भाषा भी शब्दस्खलनी हो जाती थी, अतः यों उन समारोहों के व्याख्यानों का सारा मजा किरकिरा हो जाता था। यह द्वन्द्व युद्ध वर्षों चला और निदान समाप्त हुआ। इस धर्म युद्ध की चिनगारियों की बात आगे सुनिए।

योगेश्वर को अकेले ऐसे सामान्य कुरुक्षेत्रों की ही चिन्ता न थी क्योंकि द्वारका पर उनकी अनुपस्थिति में हमले हो जाते थे तो दयानन्द के दीवाने स्वामी दर्शनानन्द महाराज पंचनद प्रदेश की चिन्ता में भी थे, वहां आर्य संस्कृति की आत्मा और वेष-भूषा मुसलमानी शासन से मग्न और ध्वस्त चली आ रही थी। इनका मस्तिष्क स्वप्न ले रहा था कि पंचनद, आर्य भूमि में फिर से 'तक्षशिला" का सा विद्यापीठ स्थापित हो। यह मनोमोदक खा रहे थे कि कब वहां भी उत्तर प्रदेश की भांति दर्जनों गुरुकुल स्थापित हों और कब सान्दीपनी के शिष्य कृष्ण सुदामा (राजा और रंक) की सी जोड़ी का साम्य भाव और ऋषियों के रहन-सहन के दृश्य देखने को मिलें। वो ये स्वप्न लेते थे कि ब्रह्मचर्याश्रम रूप तपोवन, और आचार्य शासन वाले गुरुकुल वहां स्थापित हों। उनके मन में अफगानिस्तान के सन्निकट ध्वस्त (तक्षशिला) के समीप एक विद्यापीठ स्थापित करने का जोश उमड़ रहा था और सदा रमती रहती थी उनके मन में वह रूपरेखा, जो उन्होंने अपने लघु उपन्यास "विचित्र ब्रह्मचारी" में आलेखित की है। तो इन मनोरथों की भूमिका और क्षेत्र तैयार करने के लिए आप पंचनद के केन्द्र लवपुर "लाहौर" में डेरा डाल कर बैठ गए। फकीर के पास दंड-कमण्डल और धोती की गाती के सिवाय होता ही क्या है?

चौमुखा मोर्चा

ईसाई मुसलमान और पुराण मतावलम्बी इन तीन से तो स्वामी जी महाराज का आध्यात्म मोर्चा लगा ही रहता था, अब इस समय स्वयं उनके घर के वैदिक सिद्धान्त के अनुगामियों से भी उनका मोर्चा बन्ध गया। अब इस आध्यात्मिक महापुरुष को चतुर्दिक व्यापी मोर्चा सम्भालना पड़ा। पर प्राचीन साहित्य के अभ्यासी जन जानते हैं कि चतुर्मुख ब्रह्मा के ब्रह्मास्त्र के सामने किसी के कैसे भी तीव्र अस्त्र-शस्त्र निष्फल हो जाते रहे हैं। स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज की जान्हवी वाग्धारा सबकी ही आत्मतृषा के उपशम और उसमें खुले स्नान करने के लिए प्रवाहित हुई थी और शिखा सूत्र धारी वेद भक्त जन तो सभी उनके परिजन वर्ग जैसे थे। आपने इस समय आर्य सामाजिक नेताओं को भी परीक्षा में डाल दिया। स्वामी जी के अनुज स्वामी श्री पं० मुनीश्वर जी शर्मा अपने लिखे चरित्र ट्रैक्ट की अन्तिम पंक्तियों में लिखते हैं कि 'स्वामी जी महाराज ने १९०८ ई० में हरिज्ञान मन्दिर लाहौर में निवास किया और "ऋषि दयानन्द" नामक मासिक पत्र जारी कर दिया। दिसम्बर में सनातन धर्म सभा लाहौर के मन्दिर में व्याख्यान दिया जिसमें आपने फर्माया कि मौजूदा आर्य लोग स्वामी दयानन्द के मिशन से बहुत दूर चले गए हैं। फिर सन् १९०९ ई० में रावलपिन्डी के निकट चोहाभक्तान में गुरुकुल जारी कर दिया और वहां से "वैदिक फिलासफी" मासिक पत्र भी निकाला।"

स्वामी जी महाराज के उर्दू हिन्दी साहित्य के अभ्यासी जन जानते हैं कि लाहौर में मोहनलाल रोड पर पं० वजीर चन्द जी शर्मा वैदिक पुस्तकालय तथा दयानन्द ट्रैक्ट सोसाइटी और "वृहस्पति" मासिक पत्र चलाते रहे थे और समग्र जीवन इसी में अर्पित किए हुए थे। वो इस सोसाइटी को बाइबिल सोसाइटी के विशाल पैमाने पर ले जाने का स्वप्न ले रहे थे। उन्हें केवल राय ठाकुरदत्त धवन (रिटायर जज) और भक्त ईश्वरदास जी एम० ए० ही सहायता दे रहे थे। सोसाइटी आगे बन्द करनी पड़ी थी। पण्डित वजीर चन्द शर्मा ने लाहौर के 'आर्य मुसाफिर" तारीख चार अक्तूबर सन् १९३६ ई० के अंक में लिखा है कि "सन् १९०८ ई० में श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती लाहौर पधारे और हरिज्ञान मन्दिर में ठहरे। लाला जीवनदास जी पैन्शनर की ओर से उनके दो व्याख्यानों के सम्बन्ध में विज्ञापन निकला। मैं दफ्तर के समय के बाद व्याख्यान सुनने हरिज्ञान मन्दिर आया, व्याख्यान तो न हुआ। हां १५ मिनट के लगभग स्वामी जी से वार्तालाप करने का अवसर मिल गया जिससे मुझ पर दयानन्द की भक्ति का और रंग चढ़ गया

और स्वामी दर्शनानन्द जी के व्याख्यान दफ्तर के समय के बाद लगातार कई दिनों तक मैं स्वयं कराता रहा। 'ऋषि दयानन्द" साप्ताहिक पत्र निकलवाता रहा। दयानन्द ट्रैक्ट सोसाइटी की भी स्थापना कर दी। श्री स्वामी दर्शनानन्द जी आर्य समाज के बुलाने पर रावलपिण्डी चले गये और उधर फ्रन्टीयर के स्थानों में प्रचार के लिए रावलपिण्डी ही ठहर गए। इस इलाके में गुरुकुल पोठोहार (चोहा मक्तान) खोल दिया और मैंने यहां (लाहौर में) दयानन्द ट्रैक्ट सोसाइटी का काम बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया।"

हमारे निवेदन पर श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने अभी (सन् १९५९ ई० के प्रारम्भ में) जो संस्मरण हमें लिख कर भेजने की कृपा की है उसमें से लाहौर सम्बन्धी संस्मरण वे दृढ़ आर्यत्व शीर्षक से निम्न प्रकार लिखते हैं।

एकोऽपि वेद विद्धर्मं यं व्यवस्येद्द्विजोत्तमः।
स विज्ञेयो परोधर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः॥

(ऋषि दयानन्दोक्त मनुवचन)

(वेदज्ञ एक श्रेष्ठ पुरुष जिस बात का निर्णय दे देवे वही धर्म है। लाखों मूर्खों के वोट देने से निर्णय पर पहुंची बात धर्म नहीं।)

दृढ़ आर्यत्व

यह घटना बहुधा सुनने में आ रही थी कि स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज से सभा के कुछ सभासद् असन्तुष्ट हैं और स्वामी जी को भी इस घटना का पता लग चुका था। उसी समय सनातन धर्म सभा का उत्सव भी हो रहा था। स्वामी जी उस उत्सव में वेदी पर जा विराजे। स्वामी जी के आगमन को देखकर सनातन धर्म सभा के मन्त्री जी ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा कि आज आर्य समाज के दिग्गज विद्वान स्वामी दर्शनानन्द जी सनातन धर्म की वेदी पर पधारे हैं। वे इस बात को जान चुके थे कि आर्य प्रतिनिधि सभा के कुछ लोग स्वामी जी से असन्तुष्ट हैं और इसी दृष्टि से मन्त्री जी ने निम्न वाक्य कहा था कि हमें पूर्ण आशा है कि वे आज सनातन धर्म की दीक्षा में पदार्पण करेंगे।"

स्वामी जी ने मन्त्री जी के इस कथन को सुन कर उनसे समय मांगा और अपना कथन यहां से आरम्भ किया। भूले हैं वे लोग जो ऋषि दयानन्द की गोदी में पले हुए किसी भी विद्वान् से यह आशा करते हैं कि वह अपने सिद्धान्त से विचलित हो सकेगा। एक आर्य पुरुष आदि से लेकर अन्त तक आर्य ही रहेगा। उसे अपने स्थान से कोई हिला नहीं सकता। इतना कहने के अनन्तर स्वामी जी ने अपना व्याख्यान तीव्रता से आरम्भ कर दिया। इस भाषण में उन्होंने आर्य समाज के सिद्धान्तों की पुष्टि के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कर दिए। उन्हें अपना भाषण बन्द करने के लिए बहुत कहा गया। परन्तु उन्होंने 'मेरा समय है" कह कर विषय को चालू रखा। इस प्रकार के अपने विचारों में उनकी दृढ़ता के उदाहरण अनेक हैं।"

श्री पं० द्विजेन्द्र नाथ जी वेदशिरोमणि का संस्मरण

एक दुस्साहस और पं० तुलसीराम जी की सूझ

गुरुकुल फर्रुखाबाद की बाद की बात है कि एक बार किसी उत्सव प्रसंग पर आर्य पण्डित मण्डली में परस्पर बात छिड़ी कि पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा ने स्वामी दर्शनानन्द जी का प्लेट फार्म से बायकाट किया है। वहां के कर्ताधर्ता यू० पी० की प्रतिनिधि सभा के द्वारा भी इस बात का अनुकरण चाहते हैं। गुरुकुल के अधिष्ठाता श्री पं० भगवद्दीन जी मिश्र के कानों में भी यह चर्चा डाली गई। सब विचारार्थ

इकट्ठे हुए। दिग्गज पण्डित सभी थे, श्री पं० देवदत्त जी शास्त्री; और श्री पं० नन्दकिशोर देव जी महोपदेशक, श्री पं० तुलसी राम स्वामी, और श्री पं० प्रयागदत्त जी अवस्थी प्रभृति। लगभग सभी पंजाब की तरह के बायकाट के अनुमोदन की उत्सुकता में थे। इतने में दूरदर्शी गम्भीर श्री पं० भगवानदीन जी ने कहा कि ऐसा क्यों किया जाय ? यह तो अच्छा नहीं दीखता, बजाये इसके ऐसा ही एक और नुसखा अच्छा रहेगा और वह यह कि स्वामी जी से वृक्षों में जीव विषय पर शास्त्रार्थ किया जाय। बस फिर क्या था इसके सुनते ही 'हम शास्त्रार्थ करिहैं, हम शास्त्रार्थ करिहैं" की प्रतिध्वनि होने लगी, पर प्रत्युत्पन्नमति श्री तुलसीराम जी बोले करोगे तो शास्त्रार्थ पर आपको न्याय सूत्र भी करेंगे ? अगर कहीं स्वामी जी ने एक भी आपका अतर्कित तर्क जड़ दिया तब आप में से कौन उस मिट्टी को सम्भालेगा। उसको कौन अपनी आंखों से देखेगा ?" आखिर पं० तुलसीराम स्वामी जी की इस सूझ पर सभा ने शीघ्र शान्ति पाठ पढ़ा। यह संस्मरण हमें प्रसंगवश बम्बई में प्रसिद्ध विद्वान् वेदशिरोमणि श्री पं० द्विजेन्द्र नाथ जी ने सुनाया था।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जीं से अन्तिम मिलाप

आर्य विद्या सभा की योजना खटाई में

सभाँ वा न प्रवेष्टव्यम् वक्तव्यम् नाप्रसमंजसम्।
अब्रू वनु विब्रु वन वाप्यपि नरो भवति किल्विषी॥

या तो सभा में जायें ही नहीं, जायें तो सन्दिग्ध या ऊल-जलूल बात न कहें। वहां चुप रहना या अप्रमाणित और असंगत बोलने वाला पाप भागी होता है। अन्तःकरण से आर्य सिद्धान्त आर्य अथवा जीवन से सम्बन्ध न रखने वाले अथवा उसको हृदयंगम करने का मस्तिष्क न रखने वाले और राजसी (पोलिटिकल) चकाचौंध से चुंधियाई आंखों वाले लोग आर्य समाज की गद्दियों के मालिक खाई खंदक या खाबड़-खूबड़ ठेकरे बन रहे थे। ऋषि विश्वामित्र तक को ऋषि वशिष्ठ के ब्रह्म तेज से स्पर्द्धा हो गई थी, तब वेद वाणी से शून्य लोगों की तो बात ही क्या ? स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज के प्रचार द्वारा उनकी प्राचीन शैली से पर्जन्य की सी संस्कृत वाणी की प्रचुर वर्षा से आर्य जनता को प्रभावित होते देख अंग्रेजियत की मनोवृत्ति वाले आर्य समाज के गद्दीनशीन अधिकारी घबड़ा उठे और स्वामी दर्शनानन्द जी को अकेला समझ कर उनके यश को बिगाड़ने का यत्न करते थे। वैसे ही जैसे कि पूना नगर में ऋषि दयानन्द के साथ वहां की मूर्ख मण्डली ने किया था। पर ब्रह्मास्त्रधारी कभी किसी से दबाया नहीं जा सकता है। जब सीमान्त प्रदेश पर भी "सुकृताः सुहस्ताः" स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज के द्वारा वेदवाणी के प्रचार का प्रायोजन पोठोहार गुरुकुल खुल गया तब लाहौर के प्रकाश साप्ताहिक ने एक लेख अन्त्येष्टि संस्कार से प्रकाशित कर स्वामी जी महाराज की प्रवृत्तियां दबानी चाहीं। इसका उत्तर स्वामी जी महाराज ने एक १४ पृष्ठ के ट्रेक्ट

"प्रकाश के नाम खुली चिट्ठी"

प्रकाशित कर दिया था जिसे पं० वजीरचन्द शर्मा ने वहीं प्रेस में छपवा दिया था। महात्मा मुन्शीराम जी की लिखी हुई दुःखी दिल की पुरदर्द दास्तान कुछ बड़ी पुस्तक है, उसमें गुरुकुल कांगड़ी के प्रबन्ध आदि और आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभाओं में उन पर हुए आक्षेप का और उनके मानसिक कष्टों का वर्णन है। स्वामी जी महाराज ने उनकी ही पुस्तक के आधार पर प्रत्युत्तर दिया है। वह उत्तर स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज की उस खुली चिट्ठी के अधोलिखित शब्दों में पढ़िये। वह चिट्ठी 'नमस्ते' शब्द से आरम्भ हुई है। वे लिखते हैं कि "जब कृपाराम साहनी के मन्दिर के प्रवेश का जलसा रावलपिण्डी में हुआ था तब मैं एक पृथक् कमरे में ठहरा हुआ था और लाला मुन्शीराम आदि दूसरे कमरे में ठहरे हुए थे।

प्रात: ही लाला मुन्शीराम आदि मेरे पास आये और मुझ से बातों में उन्होंने जिक्र किया कि सब गुरुकुल मिला लेने चाहिये। एक बड़ा रहे बाकी उसकी शाखायें हों। मैंने खुशी से मन्जूर किया और कहा कि पहले "आर्य विद्या सभा" बनाओ और तमाम गुरुकुल उसके हवाले कर दो, जो इम्तहान लेकर जिसको चाहे बड़ा गुरुकुल मान ले और जिसको चाहे छोटा। इस पर लाला मुन्शीराम ने "विद्या सभा" के मैम्बरों के नाम पूछे। मैंने आर्य समाज के सब संस्कृत और अंग्रेजी के स्वतन्त्र उन विद्वानों के नाम लिखवा दिये जो विद्या में नाम लेते हैं और जिनके विषय में मेरा विश्वास था कि वे जो कुछ राय देंगे, सच्चाई से देंगे, उन पर किसी का दबाव नहीं पड़ सकता, नाम लिखवा दिये। उस समय लाला मुन्शीराम जी ने इंकार किया "आप गुरुकुल कांगड़ी के जलसे में जरूर आयें: वहां मैं 'विद्या सभा" के मेम्बरों को बुलाऊंगा।" मैंने लाला मुन्शीराम से कहा कि आप गुरुकुल बदायूं के जलसे पर तशरीफ लायें। उन्होंने कहा कि बदायूं का जलसा गुरुकुल कांगड़ी के जलसे से पहले होता है इस वास्ते मुझे उस वक्त जलसे के इन्तजाम का काम होगा। कांगड़ी के जलसे पर बदायूं का जलसा खतम हो चुकता है इस वास्ते आप फारिग होंगे। अतएव बदायूं के जलसे पर या तो पं० गंगादत्त जी आचार्य गुरुकुल कांगड़ी या पं० काशीनाथ जी अध्यापक या मैं खुद आऊंगा। चुनांचे प्रतिज्ञा के कारण पं० काशीनाथ जी गुरुकुल बदायूं के जलसे पर तशरीफ लाए और ब्रह्मचारियों की परीक्षा लेकर अपनी राय लिख दी। इसके पश्चात् लाला मुन्शीराम के चार पांच खत आये कि मैं जलसे पर चार रोज पहले कांगड़ी पहुंचूं। मैं दो रोज पहले कांगड़ी गया परन्तु वहां "विद्या सभा" का कोई सन्नाटा न था। जब मैंने उनसे पूछा तो जवाब मिला कि मैंने लाहौर में चरनदास बी० ए० को लिख दिया था कि वह छाप कर खत भेज देवे। उसने शायद भेजे नहीं। "मुझे इस जवाब से सख्त अफसोस हुआ क्योंकि तीन चार रोज पहले तक तो मेरे पास खत "विद्या सभा" के सम्बन्ध में आते रहे। जब मैं कांगड़ी गया तो पता लगा कि खत ही नहीं लिखे।"

यह घटना सन् १९१० के लगभग की है और पाठक विचार करें कि स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज में संगठन के अन्दर रहने का कितना बड़ा दिल था पर उनकी किसी से अधिक नहीं पटी तो उसका कारण आर्य सामाजिक लोगों में वैदिक जीवन तथा सत्य की शिथिलता और सिद्धान्तहीनों का बहुमत ये तीन ही कारण थे। "प्रकाश" में छपी अन्त्येष्टि के जवाब में उन्होंने लिखते हुए इस खुली चिट्ठी में यह भी लिखा है कि जब मैं १८९७ ई० में ही आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से त्याग पत्र दे चुका था तो समाजों से मेरे सम्बन्ध न रखने के सर्क्युलर का मूल्य ही क्या है ? पाठकों को स्मरण रहे कि इन दो वर्षों में पंजाब के आर्य समाजों से शास्त्रार्थ और उत्सवों के लिए पचासों निमन्त्रण से कहीं अधिक आये थे। एक प्रकार से सर्क्युलर निकालने वाले आर्य जगत् के अधिकारी वर्ग के ही गौरव की हानि हुई। मनुक्त इस आदर्श को स्वामी जी तो सदा गांठ में बांधे रहते ही थे :—

> सम्मानाद् ब्राह्मणों नित्यमुद्विजेद्विषादिव
> अमृतस्यैव चाकाक्षे दवमानस्य सर्वदा ॥

वेद का निम्नलिखित अटल सिद्धान्त है—

> य एनं हन्ति मृदुं मन्यमानो देवपीयुर्धनकामो व चितात् ।
> सं तस्येन्द्रो हृदयेऽग्निमिन्ध उभे एनं द्विष्टो नभसी चरन्तम् ॥ अथर्व० ५-१८-५॥

अर्थ—देव पुरुष से द्वेष करने वाला जो धनकामी शासक अपनी मूर्खता से उसे कोमल समझ कर उसके तेज और यश का हनन करता है, ईश्वर उसके हृदय में आग लगाकर उसे जला देता है। उससे इस लोक और परलोक वाले सभी घृणा करते हैं।

पाठक अब उत्तर प्रदेश के आर्य अधिकारियों के सम्बन्ध की भी ऐसी ही थोड़ी चर्चा सुन लीजिए। महाविद्यालय ज्वालापुर जैसे एक बड़े विद्यापीठ के खुलने से प्रतिष्ठा के कुछ भूखे लीडरों में पंजाब में जैसा विरोध उत्पन्न हो गया था उससे ४-५ वर्ष पूर्व (१९०३) ई० में स्वामी जो महाराज के बदायूं गुरुकुल खोलने पर यही वातावरण बन गया था। बदायूं गुरुकुल शीघ्रता से बहुत उन्नति पर पहुंच रहा था, उसके अंगीभूत अनेक विभाग चल रहे थे। उत्तर प्रदेश के आर्य सामाजिकों में भी विरोध पैदा हो गया था। पत्रों में स्वामी जी के विरुद्ध लेख निकलने लगे थे। बदायूं के कुछ आर्य सभासद भी दो पक्षों में बंट गये थे। स्वामी जी महाराज ने इस विषय के प्रतिकार में दो ट्रैक्ट लिखे—(१) अकल का अजीर्ण और (२) चुकुष अज बरखेजद कुजामानिद मुसलमानी। इन दोनों ट्रैक्टों में आर्य कर्मवीरों की स्वामी जी ने कुछ खबर ली थी। उपदेशकों का स्वयं पाकी होना, गुरुकुल कांगड़ी और डी० ए० वी० कालेजों के विरुद्ध प्रचार और आर्य लीडरों की आर्य सिद्धान्त अनभिज्ञता आदि सब त्रुटियां स्वामी जी के विरुद्ध जो सक्युंलर जारी किया था वह कारगर न हुआ। स्वामी जी महाराज ने इन दोनों ट्रैक्टों में लिखा है कि मैं बहुत पहले मेरठ में आपकी सब समाजों से सम्बन्ध छोड़ने को कह चुका हूं और अब मेरी आखिरी नमस्ते है। इन सक्युंलरों की प्रतिक्रिया ठीक विपरीत हुई। पंजाब और उत्तर प्रदेश के निमन्त्रण दाता आर्य समाज की लम्बी सूची—यहां हम देने में असमर्थ हैं। हां, इस घटनाचक्र के पश्चात् तो कहना पड़ेगा कि व्याख्यानों और शास्त्रार्थों के लिए स्वामी जी को दोनों प्रान्तों के नगरों से आने वाले निमन्त्रणों की संख्या बहुत बढ़ गई। स्वामी जी महाराज का तेज दुगना बढ़ गया, जिसका परिणाम है आगे लिखी प्रतिनिधि सभा की स्वीकारोक्ति। यहां हमारे मुख से बलात् यह संस्कृत सूक्ति निकल पड़ती है—

घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगन्धं
छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादुचैवेक्षुकाण्डम्
दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः कांचनं कान्तवर्णं
न प्राणान्ते प्रकृतिविकृतिर्जायते चोत्तमानाम् ॥

स्वामी जी महाराज १९०९ और १९१० ई० में सीमान्त रावलपिंडी को अपना केन्द्र बनाकर प्रेस और प्लेटफार्म अस्त्रों से घर और बाहर का मोर्चा ले ही रहे थे। तभी इन्होंने 'मुन्शीराम जी की आखिरी भेंट' ट्रैक्ट भी लिखा है। लेखक ने मुख पृष्ठ पर आर्य समाजों को सावधान करने का उद्देश्य लिखा है। महात्मा मुन्शीराम जी ने अपने पत्र "सद्धर्म प्रचारक" में इन्हीं दिनों "सेवक की अन्तिम भेंट" शीर्षक से एक लेख लिखा था। वह लेख महाशय धर्मपाल आर्य के लेखों के उत्तर में है जिसमें इन्होंने आर्य समाजों से कुछ अपील की है। इसी पर स्वामी जी ने कुछ आलोचना लिखी है।

इससे कुछ वर्ष पूर्व स्वामी जी महाराज ने "आर्य समाज क्यों कमजोर है" नामक ट्रैक्ट कथानक के रूप में ज्वालापुर महाविद्यालय में छपवाया था। जिसमें एक अजनबी धर्म-भक्त व्यक्ति आर्य समाज के प्रवचनों में शामिल होता है। तब वह सत्य के प्रकाश से बड़ा प्रभावित होता है और जब वह आर्य समाज के दस नियमों को समझता है तब और अधिक आनन्द मग्न हो जाता है। वह व्यक्ति जब-जब आर्य सभासदों के आचरण और कार्य व्यवहार को देखता है तब आश्चर्य चकित होता है। ओ! वह दसों नियमों की जीवन-व्यवहार के साथ पड़ताल करता है तब एक भी नियम पर जमे हुए किसी आर्य सभासद् को दृढ़ नहीं पाता। तब उसके आश्चर्य और खेद का ठिकाना नहीं रहता। इन ट्रैक्टों में भी स्वामी जी अपनी तत्वज्ञान की शैली से ही मीमांसा करते हैं। यह ट्रैक्ट आर्य जीवन सुधार के लिए संजीवन बूटी ही समझिये। स्वामी जी महाराज ने सन् १९०९ ई० में गुरुकुल पोठोहार की स्थापना के दिनों में "समय का प्रवाह तथा सफलता" नामक ट्रैक्ट

भी आर्य समाजों को सोते से जागने के लिये लिखा है जिसमें वे प्रतिनिधि सभाओं के संगठन को स्वामी दयानन्द के उद्देश्यों से उल्टा सिद्ध करते हैं और ऋषि की प्रतिपादित तीन आर्य सभाओं की स्थापना के लिए अपील करते हैं उसमें महात्मा हंसराज जी आदि कालेज पक्ष वालों के सद्व्यवहार की सराहना करते हैं।

चंडाल चौकड़ी क्यों रची ?

सन् १८९८ ई० में देहली से जब आपका वृहत् प्रकाशन जारी था, तभी आप "वैदिक धर्म" मासिक के साथ-साथ "आर्य मैगजीन" भी निकाल रहे थे। उसके मास अगस्त १८९८ के अंक में एक पादरी के षट्दर्शन दर्पण के रिव्यू में आपने ऋग्वेद के मंत्र :—

नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणी ह्यग्रा।

तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ॥(ऋग्वेद ८।४।६)

का उद्धरण देकर राक्षस का वेद प्रतिपादित लक्षण लिखकर आर्यों को जागृत किया था कि आर्य की वृत्ति कैसी होनी चाहिए।

आचार हीन मद्य, मांस का सेवन करने वाला अथवा मनूक्त अष्टविध हत्याओं का भागीदार आर्य नहीं हो सकता। आचरण हीनों, सिद्धान्त के ज्ञान से शून्यों को आर्य सभासद मानना महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त की हत्या और उनके भारत उद्धार उद्देश्य को मलिया-मेट कर देना है।

आर्य समाज में आर्य सभासद बनने की योग्यता की घोर उपेक्षा को देख सर्वस्व त्यागी प० कृपाराम शर्मा के हृदय को बड़ी ठेस लग रही थी, उनके लिये यह आर्य अनार्य का साम्यवाद एक असह्य वेदना थी। इसे वह दयानन्द के उद्देश्य पर चोट और वैदिक संस्कृति पर वज्रपात मानते थे। भारतीय भोली आर्य जनता के लिए उनका हृदय सदा दया से द्रवित था। अपनी इस पीड़ा के उपशम के लिए ही उन्होंने "चंडाल चौकड़ी की रचना" कर डाली थी, जिस पुस्तक का १८९८ ई० में द्वितीय संस्करण भी छप गया था। इस पुस्तक का इष्ट प्रयोजन वैदिकों को वाममार्गी बनने से बचाना ही था। पुस्तक बड़े आकार के ९८ पृष्ठ की है। जो प्रथम भाग ही है इसके अन्य भाग नहीं लिखे गए। पुस्तक में कुल सात बाब हैं।

इसके एक प्रकरण में एक वकील साहब के कमरे पर चंडाल चौकड़ी का दरबार भरता है जिसमें किस तरह से मतदान (वोटिंग) में अपने साथियों से मुठभेड़ की जावे और आर्य समाज की सम्पत्ति वाली संस्थाओं पर स्वामित्व और पदाधिकार अपनी पार्टी के हाथ में रह सके, जिसके लिए इस दरबार में गम्भीर गुप्त कन्वैसिंग होता है। इन सबसे एक सदाचारी आर्य पुरुष बराबर सामना करता आ रहा है और किसी के कन्वैसिंग या पद या स्वामित्व के लोभ में न फंस कर सदाचार की रक्षा पर कटिबद्ध रहता है और आर्य अनार्य का भेद न मानने वाले स्वामी जी, वकील साहब और राय साहब आदि का भंडा-फोड़ करता है और अन्त में भारतवासियों को उल्टे मार्ग की ओर जाने से सावधान करता है।

बांदा में आर्य समाज की चिन्ता में रात्रि-जागरण

स्वामी जी महाराज स्वामी दयानन्द के मिशन की पूर्ति के लिए कितने चिन्ता-व्यग्र और सजग रहते थे और कैसी उनकी निद्रा भंग रहती थी इसके लिए स्थाली पुलाक न्याय से हम अपने स्वर्गीय मित्र आर्योपदेशक डा० नत्थासिंह जी का लिखित एक संस्मरण देते हैं।

"आर्य समाज बांदा के सालाना जलसे पर रात को आर्य समाज में मेरी और स्वामी जी की चारपाई बराबर पड़ी हुई थी। रात को मेरी आंख खुली तो देखा कि स्वामी जी अपनी चारपाई पर बैठे

हैं। मैंने सोचा कि शायद पेशाब के लिए उठे होंगे लेकिन आधी रात के बाद फिर देखा तो स्वामी जी को फिर बैठा पाया। मैंने स्वामी जी से दरयाफ्त किया कि स्वामी जी तबियत तो ठीक है या कोई तकलीफ है। उन्होंने कहा कि तकलीफ तो नहीं है पर चिन्ता जरूर है जो बार-बार चारपाई से उठा देती है। जब उन्होंने यह कहा तो मैं भी अपनी चारपाई पर बैठ गया और मैंने पूछा कि महाराज वह चिन्ता क्या है? स्वामी जी ने कहा कि सरकार ने जब से लाला लाजपतराय को मांडले भेज दिया है तबसे आर्य समाजें ऋषि की लाइन को छोड़ रही हैं और कुछ घबड़ा सी गई हैं। इस रफ्तारे मौजूदा को रोकने का उपाय सोचा जाय, सिवाय इसके इस वक्त मुझे कोई चिन्ता नहीं है। पाठक इन वाकयात को सामने रख कर देखें कि स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज को समाज के लिए किस प्रकार हमदर्दी थी।"

प्रतिनिधि सभा की विजय-घोषणा

स्वामी जी महाराज के जीवन काल में ही उत्तर-प्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभा का "वैदिक वैजयन्ती'+ नामक इतिहास ग्रन्थ छपा है। उसमें 'सामाजिक समुदाय' शीर्षक से चतुर्थ परिच्छेद पृष्ठ ३४ में प्रान्त के समाजों से सभा को आर्थिक सहायता मिलने की असफलता का दिग्दर्शन पांच कारणों के आधार पर कराया गया है।

पहले कारण में लिखा है "कतिपय समाज जो कालिज के पक्षपाती थे, वे तथा उनके से विचार वाले और भी समाज शिथिल हो गए।

२- गुरुकुल सिकन्दराबाद, गुरुकुल बदायूं, गुरुकुल विरालसी और महाविद्यालय ज्वालापुर इन चार विद्यालयों का भार उनके निकटवर्ती जिन-जिन समाजों पर डाला गया तो वे उन्हीं संस्थाओं के लिए हो लिए और सभा को दशांश आदि देने के विचार कम कर दिए।

३—इसमें सन्देह नहीं कि श्रीमान पण्डित कृपाराम शर्मा (वर्तमान स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती) ने इस प्रान्त में बहुत कुछ काम किया है। संयुक्त प्रान्त में गुरुकुल और वेद प्रचार के जन्मदाता इन्हीं महानुभाव को समझना चाहिए। उनके और आर्य प्रतिनिधि सभा के बीच जब अनबनी हुई तो इन्होने सभा का पूरा-पूरा विरोध किया। यहां तक कि बहुत से समाजों में असंतोष तक फैलाया। स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी महाराज प्रतिभाशाली पुरुष हैं। इनकी तर्कनाशक्ति, प्रगल्भ पांडित्य, अपूर्व विद्वत्ता और व्याख्यान-विलक्षणता किसी से छिपी नहीं है और यही कारण है कि सभा के अनेक रिजुलेशन छापने पर भी कतिपय समाजों ने उनको अपने उत्सवों पर निमन्त्रित कर व्याख्यान दिलवाना बन्द नहीं किया। स्वामी जी ने भी कहीं गुरुकुल, व कहीं विद्यालय आदि खोल कर उनका भार अपने भक्त समाजों पर डाल उन्हें सभा की ओर से उदासीन कर दिया।

जयन्ती ते सुकृतिनः रस सिद्धाः कवीश्वराः।
नास्तियेषाम् यशः काये जरा मरणजम भयम्॥

॥ दिग्विजयोल्लास समाप्त ॥

+यह पुस्तक आर्य प्रतिनिधि सभा के २५ वर्षों की रिपोर्ट के तौर पर सभा की ओर से सन् १९१२ में छपी है।

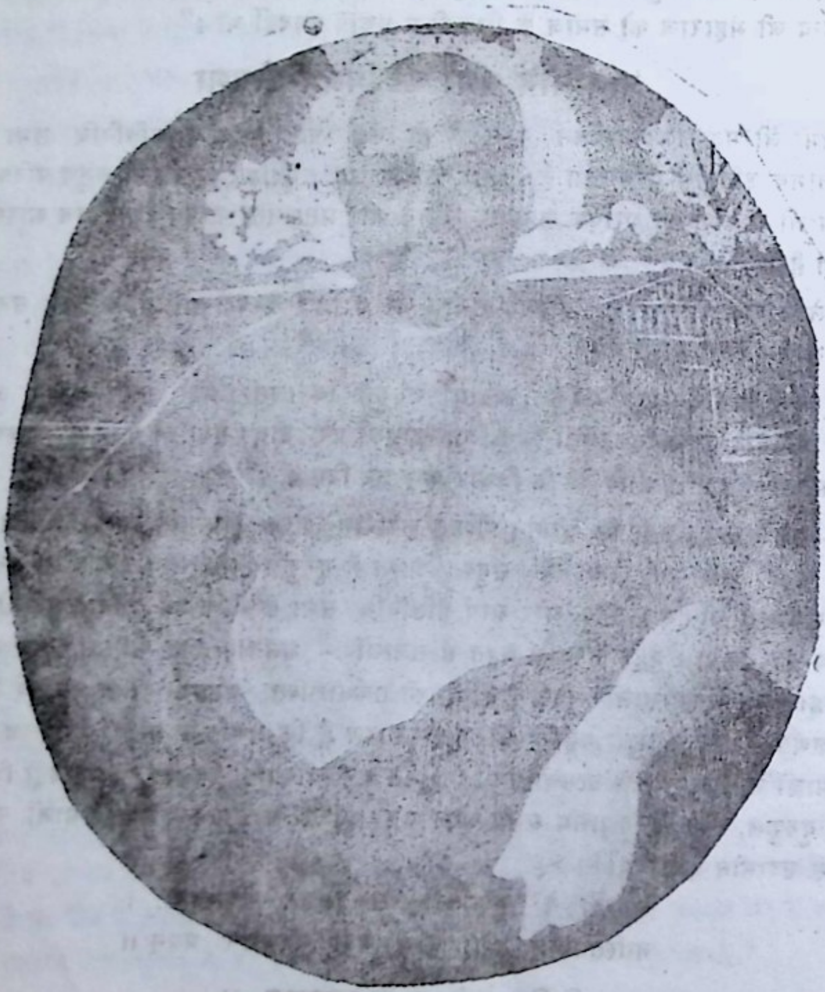

शास्त्रार्थ महारथी स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी महाराज

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर हरिद्वारस्य संस्थापकस्य वीतरागस्य योगिराजस्य

स्वामिनो दर्शनानन्दस्य संस्तवः

रचयिता—डा० कपिलदेव द्विवेदी, कुलपतिः

गुरुकुल महाविद्यालयो ज्वालापुरम् (हरिद्वारम्)

(१)

विद्या-वैभव-भास्वरो गुणनिधिः, शास्त्रार्थचिन्तापरः,
शास्त्रार्थेऽप्यसमः, रुचौ च विषमः, मोदे विषादे समः।
तर्के तीक्ष्णमतिः, श्रुतौ धृतगतिः, त्यागे निबद्धधृतिः,
सोऽयं योगिवरः सदा विजयते, श्री दर्शनानन्द-धीः॥

(२)

दीनानां हितचिन्तनेऽतिनिरतः, धर्मे रतः, कर्मधीः,
संस्थाप्यैष गुरोः कुलस्य कुलजो, ज्ञानेन्द्रियंपञ्चकम्।
लोके मर्त्यचये बभूव अमरो, देवैर्हतः सस्पृहैः,
लोकालोककरो दिवाकरसमो, विद्योतते दिव्यधीः॥

(३)

ग्रन्थानां त्रिशतीं प्रणीय, प्रणयी निःशुल्कशिक्षासृतेः,
आर्षे ग्रन्थचये च प्राच्यसरणौ, श्रद्धां निबद्धां दधत्।
भाष्यं दर्शनपञ्चके विरचयन्, तत्त्वार्थबोधे रतः,
विज्ञानाऽमृतपाव नष्ट-कलुषो, दिव्यो गतो दिव्यताम्॥

(४)

साहाय्यं समवाप्य शास्त्रनिपुणैः, सद्धर्मधुर्यैः बुधैः,
शुद्धैः[1] भीमगुणैः[2] सुपद्मरुचिरैः[3], दीप्तैः दिलीपादिभिः[4]।
आचार्यैर्नरदेव[5] शास्त्रिबिरुदैः, भक्त्या सुपुष्ट्या वृतः,
कल्याणं व्यदधादसंख्य-विदुषां, सोऽयं सुधीः दीप्तधीः॥

(५)

भोगे योगगुणे समः, सुविषमे मार्गेऽपि बद्धादरः,
त्यागे शौर्यचये निबद्धधिषणः आस्तिक्यमूर्तिः शुभा।
सर्वस्वं परिहाय आर्यसरणेः, रक्षार्थमाबद्धधीः,
वेदोक्तां सुविमाश्रयन् विजयते, शास्त्रार्थधुर्यो यतिः॥

---

१. आचार्यः श्रीशुद्धबोधतीर्थः, २. पं० भीमसेन शर्मा ३. पं० पद्मसिंह शर्मा, ४. पं० दिलीपदत्त उपाध्यायः ५. पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थः।

अद्भुत तार्किक और लेखक :
स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

—डा० भवानीलाल भारतीय

वर्षों तक नित्य प्रति एक ट्रैक्ट लिखने की प्रतिज्ञा को निभाने वाले महान् दार्शनिक, शास्त्रार्थ महारथी तथा प्रवचनपटु स्वामी दर्शनानन्द का जन्म माघ कृष्णा १० सं० १९१८ (१८६१ ई०) में लुधियाना जिले के कस्बे जगरावां में पं० रामप्रताप शर्मा के यहां हुआ। इनका पूर्वाश्रम का नाम पं० कृपाराम था। इनके पिता अपने नगर के प्रसिद्ध व्यवसायी थे। घर में धन धान्य का प्राचुर्य था। तथापि तीव्र वैराग्य और विद्या पिपासा ने कृपाराम को गृह त्याग की प्रेरणा दी। फलतः वे काशी आये और प० हरिनाथ (स्वामी मनीषानन्द) के शिष्य बने। काशी निवास के समय उन्होंने यह अनुभव किया कि विद्या अध्ययन में तत्पर छात्रों को संस्कृत के शास्त्र ग्रन्थ प्रायः सुलभ नहीं होते तथा उनका मूल्य भी अधिक होता है। छात्रों को स्वल्प मूल्य में शास्त्र उपलब्ध कराने की दृष्टि से उन्होंने तिमिर-नाशक प्रेस की स्थापना की। इस काल में उन्होंने सामवेद मूल, अष्टाध्यायी महाभाष्य तथा काशिका आदि व्याकरण ग्रन्थ, उपनिषद् मूल, तथा दर्शन विषयक अनेक ग्रन्थ छापे। १९०१ में पं० कृपाराम ने स्वामी अनुभवानन्द से सन्यास दीक्षा ली और दर्शनानन्द का नाम धारण किया।

स्वामी दर्शनानन्द पत्रकार के रूप में

स्वामी जी ने अपने कार्यकाल में तिमिरनाशक (१८८९), वेद प्रचारक, भारत उद्धारक (१८९४) वैदिक धर्म (१८९७) वैदिक मैगजीन (१८९९), तालिबे इल्म (१९००) गुरुकुल समाचार, मुबाहिसा, ऋषि दयानन्द (१९०८) तथा वैदिक फिलासफी (१९०९) आदि अनेक पत्र निकाले। ये सभी उर्दू में थे। उन्होंने इस बात की कभी चिन्ता नहीं की कि ये पत्र दीर्घ काल तक छपें या अल्प जीवन भोग कर काल कवलित हो जायें। इसी प्रकार गुरुकुलों की स्थापना करना भी उनका व्यसन था। उन्होंने सिकन्दराबाद, बदायूं, बिरालसी, ज्वालापुर तथा रावलपिण्डी में गुरुकुल खोले। ११ मई १९१३ को हाथरस में उनका निधन हो गया।

साहित्य निर्माण—पं० नरदेव शास्त्री के अनुसार स्वामी जी ने लगभग २५० ट्रैक्ट लिखे। मीमांसा तथा योग के अलावा उन्होंने अवशिष्ट चार दर्शनों पर उर्दू में टीका लिखी तथा ईश से माण्डूक्य पर्यन्त छः उपनिषदों का भाष्य किया। उनकी गीता तथा मनुस्मृति पर लिखी टीका भी मिलती हैं। जैन ईसाई तथा इस्लाम जैसे मतों की आलोचना में लिखे गये उनके लघु ग्रंथों की संख्या बहुत अधिक है। उनकी कुछ कथात्मक कृतियां भी मिलती हैं। सत्य-व्रती महानन्द, धर्मवीर, क्षमा चन्द्रोदय उपन्यास हैं। कथा पचीसी लघु कथाओं का संग्रह है। चण्डाल चोकड़ी में आर्य समाज के तत्कालीन विग्रह पर व्यंग किया गया है। उनके ट्रैक्टों का विषयानुसार वर्गीकरण करें तो ईश्वर, आत्मा, वेद, दर्शन, स्वामी दयानन्द आर्य सिद्धान्त, वैदिक धर्म और आर्य समाज आदि विषय इनमें विवेचित हुए हैं।

वीतराग स्वामी दर्शनानन्द

—प्रो० डा० तीर्थराज शास्त्री
(प्रा० प्रादे० प्रति० सभा मन्दिर मार्ग नई दिल्ली)

'दर्शन' का आनन्द सदा ही जिनको माया,
मोह-जाल में बांध सकी नहीं ममता माया।
वीतराग उपकार-प्रथा के अति अनुरागी,
सांसारिक सुख, स्नेह-सूत्र के अविचल त्यागी॥

स्वामी दर्शनानन्द महाराज का जैसा नाम था, वसे ही अपूर्व गुणों के आप आगार थे। 'मनु संहिता' में दर्शन की परिभाषा निम्नलिखित रूप से प्रदान की गई है :—

"सम्यक् दर्शन सम्पन्नः कर्मभिर्न निबद्ध्यते।
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते।"

अर्थात् सम्यक् दर्शन प्राप्त होने पर कर्म मनुष्य को बन्धन में नहीं डाल सकते; जिनको सम्यक् दृष्टि प्राप्त नहीं, वे ही संसार के जाल में पुनः पुनः फस जाते हैं।

मनुष्य क्या है ? उसके जीवन का लक्ष्य क्या है ? यह संसार क्या हे ? इसका कोई स्रष्टा भी है ? मनुष्य को किस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिए ? ऐसे अनेकानेक प्रश्न हैं, जिन्हें भारतीय ऋषियों, मुनियों एवं मनीषियों ने सृष्टि के आदि काल से ही सुलझाने का प्रयास किया है। भारतीय दर्शन एवं वेदों के अनुसार हमें तत्व का साक्षात्कार हो सकता है। न्यायदर्शन में भी महर्षि गौतम ने लिखा है :—

'तत्त्वज्ञानान्निः श्रेयसाधिगमः।"

अर्थात् प्रमाण, प्रमेय आदि के यथार्थ ज्ञान से निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष एवं कल्याण की प्राप्ति हो सकती है।

वास्तव में तत्त्व ज्ञान का तात्पर्य आत्म-साक्षात्कार अर्थात् आत्मा एवं परमात्मा दोनों का साक्षात् ज्ञान प्राप्त करना है।

अतः स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज एक तत्त्व ज्ञानी, निःस्पृह, वीतराग तथा सांसारिक माया जाल से सर्वथा कमल-पत्र के ऊपर विद्यमान बूंद की तरह असम्पृक्त थे।

दयानन्द मठ, दीनानगर के सर्वेसर्वा स्वामी सर्वानन्द महाराज ने स्वामी दर्शनानन्द के विषय में एक संस्मरण लिखा है, जो इस प्रकार है :—

स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज विचारों में इतना निमग्न रहते थे कि एक बार लाहौर में रावी नदी के पावन तट की ओर भ्रमणार्थ जा रहे थे। शरीर पर चादर ओढ़ रखी थी एवं नीचे धौत-वस्त्र था। चलते-चलते धोती गिर पड़ी, परन्तु उन्हें पता तक न चला। उनके पीछे से आगे आकर एक व्यक्ति ने कहा, "स्वामी जी ! आपकी धोती गिर गई है।" पहले तो स्वामी जी ने कहा—यह हमारी धोती नहीं है, परन्तु जब उसने धोती आगे की तो स्वामी जी ने कहा, "हां, यह तो हमारी ही है।"

प० कृपाराम (स्वामी दर्शनानन्द) जी ने 'तिमिर नाशक' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला, जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने लिखा है—

'तिमिर नाशक, यह हिन्दी भाषा की आठ पृष्ठ की पत्रिका काशी से निकलनी प्रारम्भ हुई है। इसके सम्पादक जगरावां निवासी पं० कृपाराम प्रधान आर्य

समाज काशी हैं। आप शास्त्रों का अच्छा ज्ञान रखते हैं। धर्म विषय में जिज्ञासा रखने वालों के लिए शान्ति देने वाला एक औषधि है।"

स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज न केवल तर्क शिरोमणि, एवं शास्त्रार्थ महारथी ही थे, अपितु उन्होंने निम्नलिखित विभिन्न स्थानों पर गुरुकुलों की स्थापना की—गुरुकुल सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर), गुरुकुल सूयकुण्ड (बदायूं), गुरुकुल महाविद्यालय (ज्वालापुर) तथा गुरुकुल पोठोहार (रावलपिण्डी) इत्यादि।

वस्तुतः पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता से पूर्णतया प्रभावित आज के इस दूषित वातावरण में गुरु कुलीय शिक्षा पद्धति की कितनी उपयोगिता है, महात्मा स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज ने अपनी सद्सद्-विवेकिनी सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा इसका अनुमान स्वतः कर लिया होगा तथा आप गुरुकुलों की स्थापना की ओर प्रवृत्त हुए होंगे। उनका यह प्रयास भारतीय संस्कृति एव सभ्यता के प्रचार-प्रसार के लिए सर्वथा स्तुत्य एवं श्लाघ्य है।

पंजाब केसरी लाला लाजपतराय जी ने स्वामी दर्शनानन्द के प्रति अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए कहा था—

"पण्डित कृपाराम शर्मा जगरानवी, उन आर्य विद्वानों में से हैं, जिन्होंने वेदोद्धार के लिए तन, मन धन अर्थात् सर्वस्व न्योछावर कर दिया है।"

हम भली भांति जानते हैं और सब लोग मानते है कि उन्होंने अपनी पैतृक सम्पत्ति तक धर्म-प्रचार तथा सामाजिक सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में फूंक दी।

प्रसिद्ध इतिहासकार एवं संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ पं० भगवद्दत्त जी ने स्वामी दर्शनानन्द के प्रति अपने उद्गारों को व्यक्त करते हुए कहा था—"स्वामी दर्शनानन्द जी जैसा तत्वदर्शी व्यक्ति यदि यूरोपीय देशों में उत्पन्न हुआ होता, तो वहां वह दार्शनिकों का शिरोमणि करके पूजा जाता एवं समस्त भूमण्डल उसे वैसा ही प्रतिष्ठित मानता।"

आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ने उनके प्रति अपना हार्दिक सम्मान व्यक्त करते हुए कहा था—

"मैं तो यही कहूंगा कि स्वामी दयानन्द के पश्चात् आर्य जगत् में जितना प्रचार हुआ है, उसके आधे से अधिक प्रचार का श्रेय स्वामी दर्शनानन्द जी को ही है। स्वामी जी उत्साह, जागृति एवं स्फूर्ति की जाज्वल्यमान मूर्ति थे।"

पूज्यपाद स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज ने साहित्य-सृजन के क्षेत्र में भी अद्वितीय कार्य किया। 'तपोभूमि' मथुरा द्वारा 'दर्शनानन्द संग्रह' के नाम से स्वामी जी के ७३ ट्रैक्ट प्रकाशित हुए थे। श्री पं० श्रीराम जी ने इनका वर्गीकरण करते हुए समग्र ट्रैक्टों को सात भागों में विभक्त किया था। इन भागों से पूर्व प्रारम्भ में 'आर्य धर्म सभा की योजना' नामक ट्रैक्ट दिया। उनके कुछ प्रमुख ट्रैक्टों एवं पुस्तकों की सूची निम्नलिखित है :—

१. आर्य धर्म सभा की योजना, २. भारतवर्ष की उन्नति का सच्चा उपाय, ३. गुरुकुल, ४. नवीन और प्राचीन शिक्षा प्रणाली की तुलना, ५. धर्म शिक्षा, ६. गुरु शिक्षा, ७. आत्म-शिक्षा भाग प्रथम व द्वितीय, ८. विचित्र ब्रह्मचारी, ९. तत्त्ववेत्ता ऋषि की कथा—भाग प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ, १०. नुस्खा तबाहीये हिन्द, ११. नवयुवको उठो, १२. आर्य समाज कमजोर क्यों है, १३. जैनियों के प्रति प्रश्नोत्तर, १४. ईसाई मत अविद्वानों से प्रश्न तथा वैदिक धर्म और इस्लाम के मन्तव्यों की तुलना इत्यादि।

इसके अतिरिक्त आपने बड़ी-बड़ी पुस्तकें भी लिखीं। कुछेक के नाम इस प्रकार हैं :—

मनुस्मृति, लघु कौमुदी सभाषा टीका, सांख्य दर्शन, न्याय दर्शन, वेदान्त एवं वैशेषिक दर्शन आदि।

अतः प्रस्तुत निबन्ध का उपसंहार करते हुए संक्षेपतः पूज्यपाद स्वामी जी के विषय में यही उद्गार व्यक्त किया जा सकता है कि स्वामी जी महाराज एक वीतराग, परोपकारी, साहित्य सृष्टा, कर्मयोगी तथा वैदिक संस्कृति एवं सभ्यता के प्रचार-प्रसार में सर्वथा तल्लीन रहने वाले व्यक्ति थे। आर्य समाज के क्षेत्र में ऐसे संन्यासियों का पदार्पण आर्य जगत् के लिए एक गौरव की वस्तु है। स्वामी जी के विषय में प्रस्तुत निम्न श्लोक युक्ति-युक्त प्रतीत होता है :—

प्रखर तर्क प्रतिभा द्युतिमान,
वेद वाणी व्याख्यान विधान,
शारदा शुचि सन्तति सम्मान,
प्रणामांजलिमेतां स्वीकुरु ॥
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

लक्ष्य एक : आयाम अनेक

—आचार्य रामनाथ वेदालंकार

महर्षि दयानन्द सरस्वती के सम्पर्क में आकर जिनके जीवन की दिशा परिवर्तित हो गई। उनमें स्वामी श्रद्धानन्द, पं० गुरुदत्त विद्यार्थी और पंडित लेखराम के साथ स्वामी दर्शनानन्द जी का भी नाम आता है। स्वामी दयानन्द की जन्म तिथि फाल्गुन कृष्णा दशमी संवत् १८८१ है तथा स्वामी दर्शनानन्द की माघ कृष्णा दशमी संवत् १९१८ है। इस प्रकार स्वामी दर्शनानन्द, स्वामी दयानन्द से ३६ वर्ष ११ मास छोटे थे। स्वामी दर्शनानन्द का पूर्व नाम कृपाराम था। कहते हैं कि कृपाराम वेदान्ती विचारधारा से प्रभावित थे तथा स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ करने की लालसा मन में संजोये हुए थे। परन्तु दयानन्द के भाषणों का रंग उन पर चढ़ गया। उन्हें स्वामी दयानन्द के सैंतीस भाषण सुनने का अवसर मिला था; उनसे प्रभावित होकर वे भी दयानन्द की ही विचारधारा के पक्षधर होकर कार्य करने लगे।

स्वामी दर्शनानन्द जी के जीवन का मूल्यांकन हम कई दृष्टियों से कर सकते हैं। वे एक कुशल ग्रन्थकार, आस्थावान पुस्तक-प्रकाशक, निर्भीक वक्ता, प्रभावशाली उपदेशक, सिद्धहस्त अनुवादक एवं व्याख्याकार, मंजे हुए पत्रकार एवं प्रबल ईश्वर-विश्वासी थे। उन्होंने अनेक गुरुकुल खोलकर शिक्षा-जगत् में कीर्तिमान स्थापित किया था।

वे दर्शनशास्त्र के उद्भट विद्वान् थे। यह पाण्डित्य उन्होंने काशी में अध्ययन करते हुए अपने गुरु स्वामी मनीषानन्द से प्राप्त किया था। उन्होंने न्याय, वैशेषिक, सांख्य और वेदान्त दर्शनों का सरल अनुवाद भी किया था, जो मूलतः उर्दू में था तथा जिसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ। दर्शनशास्त्र के अतिरिक्त आपने ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य इन छः उपनिषदों की भी उर्दू में सरल व्याख्या की थी, जिसके हिन्दी संस्करण आज भी सुलभ हैं तथा पाठकों द्वारा चाव से पढ़े जाते हैं। मनुस्मृति की सरल भाषा-टीका भी आपने लिखी थी। जनता में जागृति फूंकने के उद्देश्य से आपने २०० से अधिक ट्रैक्ट लिखकर प्रकाशित करवाये थे। ये ट्रैक्ट ईश्वर, जीवात्मा, मुक्ति-व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, कर्मफल, जैनमत समीक्षा, ईसाई मत समीक्षा इस्लाममत-समीक्षा आदि विविध विषयों पर हैं। इनकी विशेषता यह है कि ये बोधगम्य, सरल भाषा में लिखे गए हैं, जिन्हें साधारण व्यक्ति भी समझ सकता है। आपके प्रसिद्ध ग्रन्थ दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह नाम से ६ प्रसूनों में प्रकाशित उपलब्ध हैं।

संन्यास-ग्रहण से पूर्व आपने छात्रों को सुलभ कराने हेतु अधिक मूल्य में प्राप्त होने वाले कई संस्कृत ग्रन्थों के सस्ते संस्करण प्रकाशित किए थे, जिनमें काशिकावृत्ति, पातंजल महाभाष्य, वैशेषिक उपस्कार, न्याय वात्स्यायन भाष्य, मीमांसा, सांख्य दर्शन विज्ञान भिक्षु भाष्य, पारस्कर गृह्य सूत्र आदि प्रमुख थे। संन्यास की दीक्षा आपने सन् १९०२ ई० की वसन्त ऋतु में राजघाट गंगातट पर स्वामी अनुभवानन्द जी से ली थी।

स्वामी दर्शनानन्द एक निर्भीक वक्ता तथा सहृदय उपदेशक थे। बोलते थे तो जनता का मन मोह लेते थे। कभी कथा-किस्से सुनाकर और कभी गम्भीर दार्शनिक विवेचन करके श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर लेते थे। बीच-बीच में उर्दू शेर भी बोलते थे। उनकी भाषा प्रत्येक को समझ में आने वाली होती थी। उनके व्याख्यान किसी स्वसिद्धान्त के मण्डन पर, शास्त्रमीमांसा पर या परपक्ष खण्डन पर होते थे। उपनिषद्

कथा भी करते थे। शंका-समाधान भी हुआ करता था। उनके व्याख्यानों में उपस्थिति प्रायः अच्छी होती थी। एक बार किसी ने उन्हें परामर्श दिया कि आप जैन, मुस्लिम या ईसाई मतों का खण्डन न किया करें, तब लोग आपसे अधिक प्रभावित होंगे तथा धर्म प्रचार भी अच्छा होगा। इस पर आपने कहा कि विपक्षी मतों के कूड़े-कर्कट की सफाई के बिना अपने धर्म की बागवानी नहीं हो सकती।

स्वामी जी एक सफल पत्रकार के रूप में भी हमारे सामने आते हैं। उन्होंने तिमिर नाशक, भारत उद्धार, वैदिक धर्म, तालिबे इल्म, मुबाहिसा नामक साप्ताहिक एवं वेद प्रचारक, आर्य सिद्धान्त, वैदिक मैगजीन एवं वैदिक फिलासफी नामक मासिक पत्रों का प्रकाशन किया था। ये पत्र विभिन्न समयों पर विभिन्न स्थानों से निकले। साप्ताहिक तथा मासिक पत्रों को वे वैदिक धर्म-प्रचार का एक अच्छा साधन मानते थे। पत्र निकालने के लिए उन्होंने धनाभाव की कभी चिन्ता नहीं की। पत्रों की उन्होंने झड़ी-सी लगा दी थी।

शास्त्रार्थ महारथी के रूप में भी आर्य जगत् में स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती का एक विशिष्ट स्थान है। काशी के धुरन्धर विद्वान् पं० शिवकुमार शास्त्री से उनका 'देव शब्द का अर्थ विद्वान् होता है या नहीं' इस विषय पर शास्त्रार्थ हुआ था, जिसमें उन्होंने अनेक प्रमाणों के आधार पर देव शब्द का विद्वान् अर्थ होना सिद्ध कर दिखाया था तथा वे विजयी घोषित हुए थे। उनके अन्य शास्त्रार्थों के विषय' वेद और कुरान में से इल्हामी ग्रन्थ कौन-सा है ?', 'ईसाई मत कैसा है ?', ईश्वर सिद्धि, प्रायश्चित, मृतक-श्राद्ध आदि रहे। उनका एक प्रसिद्ध शास्त्रार्थ 'वृक्षों में जीव' विषय पर पं० गणपति शर्मा से हुआ था। स्वामी जी की प्रतिभा, सूझ-बूझ, हाजिर-जवाबी, विद्वत्ता एवं वक्तृत्व-कला के सम्मुख प्रतिपक्षी शास्त्रार्थकर्ता टिक नहीं पाते थे।

स्वामी दर्शनानन्द जी द्वारा स्थापित गुरुकुलों की शृंखला भी उनके महत्त्व को उजागर करती है। वे गुरुकुल सिकन्दराबाद, गुरुकुल बदायूं, गुरुकुल बिरालसी, गुरुकुल पोठोहार तथा गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर आदि के संस्थापक थे। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का नाम यद्यपि अन्त में लिख गया है, तो भी यह विशिष्ट ख्याति प्राप्त संस्था रही है तथा अब भी आर्य समाज के गुरुकुलों में एक उत्कृष्ट संस्था है। इस संस्था के शिरोमणि शिक्षक पं० गंगादत्त शास्त्री (बाद में स्वामी शुद्धबुद्ध तीर्थ), पं० नरदेव शास्त्री, प० पदमसिंह शर्मा आदि पहले गंगापार गुरुकुल कांगड़ी में अध्यापक थे तथा महात्मा मुन्शीराम के दाहिने हाथ थे। गुरुकुल कांगड़ी में यद्यपि शिक्षा निःशुल्क थी, पर भरण-पोषण का व्यय छात्रों के अभिभावकों से लिया जाता था। महात्मा मुन्शीराम का विचार था कि जो भरण-पोषण का व्यय सुविधापूर्वक दे सकते हैं उनका भी व्ययभार दानदाताओं पर क्यों डाला जाए। स्वामी दर्शनानन्द जी का विचार था कि भरण-पोषण का भी व्यय न लेकर छात्रों को गुरुकुल में सर्वथा निःशुल्क प्रविष्ट किया जाना चाहिए। अतः उन्होंने ज्वालापुर में अपना पृथक् गुरुकुल खोलना उचित समझा। पृथक् गुरुकुल खोलने में अन्य हेतु भी रहे होंगे, जैसे यह भूमि बस्ती के समीप होने से अधिक छात्र लाभान्वित हो सकेंगे तथा अधिक शिक्षा प्रसार होगा यह भावना भी रही होगी। इस गुरुकुल के खुलने की योजना बनने पर गुरुकुल कांगड़ी के प० गंगादत्त जी, पं० नरदेव शास्त्री एवं पं० पदमसिंह शर्मा भी यहीं आ गए। छात्रों से कुछ भी व्यय न होने के आदर्श का निर्वाह बहुत समय तक नहीं हो सका। फिर भी ज्वालापुरीय गुरुकुल महाविद्यालय अनेक दृष्टियों से अब भी स्वामी जी की कीर्ति को उज्ज्वल कर रहा है। इसमें विद्याभास्कर उपाधि दी जाती है, जो कई विद्यालयों एवं सरकारों द्वारा मान्य है। इस गुरुकुल ने पं० उदयवीर शास्त्री, डा० हरिदत्त शास्त्री, पं० सूर्यकान्त, पं० क्षेमचन्द्र सुमन, डा० कपिलदेव द्विवेदी, स्वामी नारायण मुनि चतुर्वेद आदि कई विभूतियों को जन्म दिया है।

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती की बहुंमुखी साधना एवं तपस्या से वैदिक धर्म प्रचार, शिक्षा प्रसार, पाखण्ड खण्डन आदि को बड़ा बल मिला था। आज भी आर्य जगत् में फहराती हुई उनकी कीर्ति-पताका उनके कार्यों को आगे बढ़ाने की हमें प्रेरणा दे रही है। ●

(१ पेज का शेष)

नामोनिशान नहीं, धर्म कहने को तो बहुत हैं परन्तु करने का किसी को ध्यान भी नहीं, ऐसी दशा में तब उस महात्मा ने सुधार पर कमर कसी। विरोध आरम्भ हुआ। एक ओर समस्त संसार के बीस करोड़ मुसलमान अमीर, नवाब और बड़े पराक्रमी पहलवान, दूसरी ओर ईसाई जिनकी बादशाहत पश्चिम से पूर्व तक फैल रही थी, तीसरी ओर सारे हिन्दू जो २४ करोड़ की संख्या में थे तथा बड़े-बड़े राजा, महाराजा, सेठ, साहूकार, पण्डित, सन्यासी और गुसाईं मुकाबिले पर थे इन सबका विरोधी वह ईश्वर का भक्त था। किसी से सन्धि न थी ; सब विरोध पर कटिबद्ध थे। बड़े-बड़े शास्त्रार्थ हुए, प्रतिपक्षियों ने खूब जोर लगाया और जब विद्या के बल से काम न चला तो ईंट और पत्थर बरसाए। हुआ क्या ? महात्मा तनिक भी नहीं घबराया। वरन् जितना विरोध बढ़ता गया उनको अपनी सफलता की आशा बढ़ती दिखाई दी। पहिले मौखिक उपदेश तथा शास्त्रार्थ किए, फिर पाठशालाएं खोलीं तत्पश्चात् समाज बनाना, वेद भाष्य करना एवं अपने सिद्धान्तों के प्रचारार्थ पुस्तक रचनी आरम्भ कीं। परिणाम क्या हुआ ? संसार के सामने स्वामी दयानन्द, अकेला सन्यासी जिसके पास एक लंगोटी के अतिरिक्त कोई वस्तु न थी, सफलता को प्राप्त हुआ।

प्रिय पाठकगण ! बहुधा मनुष्य कहते हैं कि यदि स्वामी दयानन्द ने ५० सहस्र अथवा १ लक्ष मनुष्य अपने विचार के बना लिए तो क्या हो गया जबकि ३० करोड़ मनुष्य तो भारतवर्ष में ही हैं। इस दशा में तीन सहस्र मनुष्य में से एक ले लेना कोई बड़ी बात नहीं है। परन्तु स्मरण रहे कि यदि विजेता को विजय में एक मोती मिल जावे तो बहुत है जिसमें यह तो एक लक्ष मनुष्य हैं। क्योंकि समस्त संसार के सामने एक मनुष्य का खड़े रहना ही असम्भव सा है, तो फिर उनसे छीन लेना कुछ थोड़ी वीरता नहीं है। और यह तो विचार कीजिए कि एक मनुष्य के पास ५० गांव हैं और दूसरे के पास एक भी नहीं। अब यदि दूसरा मनुष्य पहिले से लड़ कर एक गांव छीन ले तो आप वीर किसे कहेंगे ? और फिर लड़ाई भी ऐसी जिसमें छल या फरेब का लेश न हो। अजी अचेत पाकर काम कर लेना तो और बात है परन्तु संसार से डंके की चोट मैदान में मुकाबिला करना और उसको जीत कर उसका भाग छीनना बहुत ही असम्भव है।

—स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती (रिफार्मर से साभार)

(पृष्ठ ४ का शेष)

इस सिद्धान्त पर उनको पूर्ण विश्वास था।

एक बार गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में अनाज के अभाव के कारण ब्रह्मचारियों के लिए भोजन तैयार न हो सका। भण्डारी ने कहा कि आज न दाल है न चावल है और न ही घी है कोई सामान नहीं है, इसलिए ब्रह्मचारियों के लिए आज भोजन नहीं बनेगा। अब क्या किया जाये ? भोजन का समय नजदीक आने पर भण्डारी ने पुनः आकर कहा कि महाराज ब्र० भूखे हैं क्या किया जाये ? स्वामी जी ने कहा कि भोजन की घण्टी बजा दो और उनको पंक्ति में बैठाकर थाली और गिलास उनके सामने रख दो। भण्डारी ने कहा कि महाराज खाली थाली और गिलास रखने से क्या होगा ? स्वामी जी ने कहा ईश्वर पर विश्वास करो वही सबका दाता है। जब विद्यार्थी पंक्तियों में बठ गये और अपने सामने भोजन की इच्छा में खाली कटोरी और गिलास देख रहे थे उसी समय ज्वालापुर शहर का एक सेठ बहंगी में हलवा, पूड़ी और सब्जी लेकर आया और कहा कि स्वामी जी इसे आप अपने गुरुकुल हेतु स्वीकार करें,स्वामी जी ने उसे स्वीकार करके विद्यार्थियों में बटवा दिया।

पादरी ज्वालाप्रसाद ने आर्यसमाज शाहदरा को शास्त्रार्थ करने का चेलेंज दिया। इस शास्त्रार्थ के लिए आर्य समाज की ओर से पं० रामचन्द्र देहलवी और पं० मुरारीलाल शर्मा ये दो युवक वहां पहुंचे थे, जो अभी बहुत छोटी आयु के थे और ईसाईयों से उन्होंने कभी शास्त्रार्थ नहीं किया था और एक बहुत बड़े पादरी से इनकी पहली टक्कर थी। पण्डित रामचन्द्र देहलवी जब पादरी के प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे और केवल दो ही बार बोले थे कि पादरी ज्वालाप्रसाद ने खड़े होकर कहा कि मुझे पता चल गया कि स्वामी दर्शनानन्द मरे नहीं जिन्दा हैं। और उनकी रूह इस नौजवान के अन्दर प्रवेश कर गई है।

(पृष्ट ५ का शेष)

इनके पितामह प० दौलतराम अन्तिम समय में काशी में निवास करने गए थे। वहां वे संस्कृत पढ़ने वाले छात्रों को छात्रवृत्ति और भोजन आदि देते थे। उनके दिवंगत होने पर कृपाराम जी ने यह काम सम्भाला। उन्होंने १८८६ ई० में 'तिमिरनाशक' प्रेस की स्थापना की। इस प्रेस से उन्होंने 'तिमिर नाशक' साप्ताहिक पत्र निकाला और अष्टाध्यायी, काशिका, महाभाष्य आदि ग्रन्थों को भी प्रकाशित किया। ये निर्धन छात्रों को बहुत कम मूल्य पर या बिना मूल्य के भी ये ग्रन्थ देते थे। काशी के प्रायः सभी संस्कृतम विद्वान् पं० कृपाराम के इस उपकार के ऋणी हैं और वे उनका नाम सादर स्मरण करते हैं।

उन्होंने काशी में रहते हुए पं० हरिनाथ जी (स्वामी मनीषानन्द जी) से दर्शनशास्त्र पढ़े और न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग और वेदान्त दर्शनों में विशेष योग्यता प्राप्त की। बाद में उन्होंने इन दर्शनों का हिन्दी में विस्तृत भाष्य भी किया है।

वे वर्तमान समय में महर्षि दयानन्द के मन्तव्यानुसार प्राचीन गुरुकुल पद्धति के प्रवर्तक हैं। उन्होंने पांच गुरुकुलों की स्थापना की। सर्वप्रथम १८९८ में गुरुकुल सिकन्दराबाद की स्थापना की तत्पश्चात् १९०३ में गुरुकुल बदायूं, १९०५ में गुरुकुल विरालसी (मुजफ्फरनगर), १९०७ में गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) की स्थापना की। इसके अतिरिक्त रावलपिंडी के निकट चोहानभक्तां में गुरुकुल पोठोहार की स्थापना की। इस समय गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर ही स्वामी दर्शनानन्द जी के आदर्शों के अनुरूप संस्कृत और वैदिक वाङ्मय की शिक्षा का प्रमुख केन्द्र चल रहा है।

शास्त्रार्थ महारथी के रूप में उनका नाम अग्रगण्य है। उन्होंने अपने जीवन में छोटे-बड़े सैकड़ों शास्त्रार्थ किए थे। वे ही एक ऐसे शास्त्रार्थ महारथी थे, जो पौराणिकों, ईसाई, मुसलमान, जैनों आदि सभी से शास्त्रार्थ में विदग्ध थे। उनके अकाट्य तर्कों का उत्तर प्रतिपक्षी नहीं दे पाते थे, अतः निरुत्तर हो जाते थे। सभी विपक्षी एकमत से यही भाव प्रकट करते थे कि उनकी तर्क शक्ति प्रबल और अनुपम है, अतः उनके सामने शास्त्रार्थ के लिए आने से घबराते थे। उनकी एक विशेषता यह भी थी कि वे कभी भी अशिष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं करते थे, अतः विपक्षी भी उन्हें पूज्य, मान्य और हितैषी के तुल्य मानते थे। सभी विपक्षी विद्वानों ने उनके स्वर्गवास पर परिवार के एक हितैषी के रूप में उन्हें श्रद्धांजली अर्पित की थी।

उनके शास्त्रार्थों में कुछ उल्लेखनीय शास्त्रार्थ ये थे:—(१) काशी में पं० शिवकुमार शास्त्री से 'देव शब्द का क्या विद्वान् अर्थ भी होता है। (२) आगरा में मौलवी अब्दुल फरह और मौलवी अब्दुल हमीद पानीपती से 'वेद और कुरान में कौन सी पुस्तक इलहामी है'। इसकी मध्यस्थता एक यूरोपियन सज्जन फारनेन ने की थी। (३) १९०३ में देवरिया (गोरखपुर) में 'वेद ईश्वरीय है या कुरान' विषय पर मौलवी सनाउल्ला अमृतसरी, मौलवी अब्दुल हक, (देहली), मौलवी अबूरहमत (मेरठ) आदि से हुआ। आर्यसमाज की ओर से स्वामी दर्शनानन्द जी के सहयोगी थे—पं० रुद्रदत्त, पं० नन्दकिशोर देव शर्मा, पं० मुरारीलाल शर्मा और मुंशी गिरधारीलाल। (४) १९०४ में ईसाई पादरी ज्वालासिंह से, (५) ८ अप्रैल १९१२ को गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में आर्यसमाज के उद्भट विद्वान् पं० गणपति शर्मा से 'वृक्षों में जीव है या नहीं।' यह शास्त्रार्थ 'भारतोदय' में १९६९ विक्रमी के ४ से ६ अंकों में ६० पृष्ठों में पूरा छपा है। प० गणपति शर्मा वृक्षों में जीव मानते थे और स्वामी जी 'नहीं'। यह शास्त्रार्थ विद्वत्ता की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। (६) जून १९१२ में अजमेर में जैन विद्वान् पं० गोपालदास बरैया से 'ईश्वर सृष्टिकर्ता है'। जैन विद्वान् ईश्वर को सृष्टिकर्ता नहीं मानते हैं।

इन सभी शास्त्रार्थों में स्वामी दर्शनानन्द जी विजयी रहे और वैदिक सिद्धांतों की विजय हुई। इन शास्त्रार्थों के फलस्वरूप अनेक स्थानों पर पौराणिक और जैनी विद्वानों ने आर्यसमाज को स्वीकार किया, सहस्रों युवक ईसाई और मुसलमान होने से बच गए। वैदिक सिद्धांतों को सयुक्तिक सिद्ध करने वाला स्वामी दर्शनानन्द जी जैसा विद्वान् स्वामी दयानन्द जी के बाद दूसरा नहीं हुआ है।

स्वामी जी की तार्किक प्रतिभा का एक उदाहरण देना उचित होगा। स्वामी जी मुसलमानों से एक स्थान पर शास्त्रार्थ कर रहे थे। उन्होंने मौलाना साहब से पूछा कि बताइए—'क़यामत के बाद कब्रिस्तानों से मुर्दे इसी दफ़नशुदा जिस्म से उठेंगे या और कोई नया जिस्म (शरीर) होगा'? मौलाना साहब ने कहा कि—'और नया जिस्म होगा'। स्वामी जी ने कहा—'उसी नये जिस्म का मिलना ही तनासुख (पुनर्जन्म) कहलाता है।' इस प्रकार स्वामी जी ने मौलाना साहब को पुनर्जन्म स्वीकार करने के लिए बाध्य किया।

स्वामी जी उच्चकोटि के लेखक, सम्पादक और साहित्यकार थे। संस्कृत, हिन्दी और उर्दू तीनों भाषाओं पर उनका समान अधिकार था। लेखक के रूप में उन्होंने ३०० से अधिक बड़े और छोटे ग्रन्थों की रचना की है। इनके ट्रैक्टों की संख्या २०० से ऊपर है। वे प्राय: एक ट्रैक्ट प्रतिदिन लिख लेते थे। इनके शास्त्रीय ग्रन्थों में विशेष उल्लेखनीय हैं—न्यायदर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्यदर्शन और वेदान्तदर्शन (पूर्वार्ध) के भाष्य, उपनिषत्-प्रकाश, मनुस्मृति का हिन्दी अनुवाद, श्रीमद् भगवद्गीता-सिद्धांत। इनके कुछ ट्रैक्टों का संग्रह-दर्शनानन्द ग्रन्थ-संग्रह पूर्वार्ध और उत्तरार्ध के रूप में छपा है। ये ट्रैक्ट आर्य सिद्धांतों की पुष्टि के लिए लिखे गए हैं। कुछ ट्रैक्ट ईसाई, मुसलमान, जैनियो और पौराणिकों के मन्तव्यों के खण्डन के रूप में हैं।

कवि के रूप में उन्होंने 'जंग-ए-आजादी' नामक एक काव्यकृति उर्दू में प्रकाशित की थी। इसमें हिन्दी और उर्दू छन्दों का प्रयोग है। भाषा हिन्दी, उर्दू, फारसी और पंजाबी मिश्रित है। उन्होंने उपन्यास और कहानी-ग्रन्थ भी लिखे हैं। इनमें मुख्य हैं—सत्यव्रती महानन्द, धर्मवीर, क्षमा चन्द्रोदय, चण्डाल चौकड़ी, विचित्र ब्रह्मचारी और कथा पच्चीसी।

पत्रकार के रूप में उन्होंने कई पत्र-पत्रिकाएं निकाली थीं। इनमें उल्लेखनीय हैं—१. तिमिरनाशक (साप्ताहिक, काशी से, १८८६ ई०) २. वेद-प्रचारक (मासिक) ३. भारत उद्धार (साप्ताहिक, जगरांवा से, १८९४ ई०), ४. वैदिक धर्म (उर्दू, मुरादाबाद, १८९७ ई०), ५. वैदिक धर्म (दिल्ली १८९८), ६. वैदिक मैगजीन (दिल्ली, मासिक, १८९९ ई०), ७. तालिबे इल्म (साप्ताहिक, आगरा, १९०० ई०), ८. आर्य सिद्धांत (मासिक, बदायूं १९०३) और मुबाहिसा (साप्ताहिक, बदायूं), ९. ऋषि दयानन्द (मासिक, लाहौर, १९०८), १०. वैदिक फिलासफी (मासिक, गुरुकुल पोठोहार, १९०९ ई०) आदि। उन्होंने लगभग १२ पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन और प्रकाशन किया।

स्वामी दर्शनानन्द जी दीनोद्धारक के रूप में सदा अमर रहेंगे। उनके स्थापित ५ गुरुकुलों से १० हजार से अधिक दीनछात्र लाभान्वित हुए हैं। उन्होंने आर्यसमाज और विश्व को सैकड़ों प्रचारक, उपदेशक और वेदज्ञ विद्वान् दिए हैं। उनमें विशेष उल्लेखनीय कुछ विद्वान् ये हैं--आचार्य उदयवीर शास्त्री, डा० सूर्यकांत, डा० हरिदत्त शास्त्री, डा० नरेन्द्र देव सिंह, डा० कपिलदेव द्विवेदी, आचार्य डा० गौरीशंकर, आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन, श्रुतिकांत, डा० गणेशदत्त, श्री प्रकाशवीर शास्त्री, श्री रुद्रदत्त शास्त्री, श्री ओम्प्रकाश शास्त्री, आचार्य नन्दकिशोर शास्त्री, नारायण मुनि चतुर्वेद, डा० कर्णसिंह, डा० सच्चिदानन्द शास्त्री आदि।

स्वामी दर्शनानन्द जी की तपस्या का ही फल था कि उन्हें संस्कृत के उद्भट विद्वान् गुरुकुलों के आचार्य और अध्यापक के रूप में मिले। उनमें विशेष उल्लेखनीय हैं—स्वामी शुद्ध बोधतीर्थ, पं० काशीनाथ शास्त्री (वाराणसी), पं. भीमसेन शर्मा, पं. पद्मसिंह शर्मा, पं. दिलीपदत्त उपाध्याय, आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ।

स्वामी दर्शनानन्द जी पक्के भोगवादी थे। वे बीमारी में कभी कोई दवा नहीं लेते थे। उनका मत था कि मनुष्य के भोगों के कारण बीमारी आदि होती हैं। भोग की समाप्ति पर रोग अपने आप ठीक हो जाएगा। स्वर्गीय डा. नत्थासिंह उपदेशक ने अपने संस्मरण में लिखा है कि स्वामी जी को बहुत दस्त हो रहे थे। उन्होंने डाक्टर की दवा नहीं ली और दही-पकौड़ी मगांकर खाई। इससे ही उनको दस्त बन्द हो गया। नए नए गुरुकुलों की स्थापना करना और उन्हें राम-भरोसे छोड़कर आगे बढ़ते जाना उनकी प्रवृत्ति थी। भाग्य से उन्हें योग्य और तपस्वी कार्यकर्ता मिल जाते थे।

११ मई १९१३ ई० को उन्होंने अपना पार्थिव शरीर छोड़ा और दिव्य-ज्योति में विलीन हो गए। उनके निधन पर न केवल आर्यजगत् ने शोक मनाया, अपितु उनके सम्पर्क में आने वाले सभी पौराणिक पंडित, ईसाई, मुसलमान और जैनी विद्वानों ने भी वज्राघात के तुल्य शोकोद्गार प्रकट किए।

उन्होंने अन्तिम समय में आर्यसमाज को चेतावनी दी कि वे विद्वानों का आदर-सम्मान करना सीखें, अन्यथा आर्यसमाज निष्क्रिय और निष्प्राण हो जाएगा। उनकी यह चेतावनी आज भी उतनी ही सार्थक और उपयोगी है। विद्वान् और तपस्वी ही किसी समाज के निर्माता होते हैं। महर्षि दयानन्द की वसीयत में तीन बातें मुख्य थीं,उनपर आज भी पूरा ध्यान देना अनिवार्य है वे हैं—१. वेदों की रक्षा, उनके लिए गुरुकुलों की स्थापना, २. आर्यसमाजों की स्थापना, ३. वेद-प्रचार के कार्य में आर्यसमाज को अभी बहुत कुछ करना शेष है। वेदों की रक्षा और उनका प्रचार ही आर्यसमाज को नवजीवन प्रदान कर सकता है।

(पृष्ठ ३ का शेष)

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती के सम्बन्ध में दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के मुखपत्र 'आर्य सन्देश' का एक विशेषांक प्रकाशित करके का इस वर्ष निर्णय लिया गया था। सार्वदेशिक सभा के महामंत्री, हमारे अग्रज डा० सच्चिदानन्द शास्त्री ने इस विशेषांक के लिए मुख्य एवं महत्त्वपूर्ण आलेख लिखने के कर्त्तव्य का निर्वाह किया, हम उनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। वैदिक जगत् के अन्य अनेक विद्वानों तथा आर्य समाज के नेताओं ने भी इस अंक के लिए अपने लेख तथा अपनी शुभकामनायें हमें भेजी हैं, हम उनके आभारी हैं। पूज्य स्वामी आनन्द बोध सरस्वती का आशीर्वाद हमें सदैव मिलता रहा है।

आर्य केन्द्रीय सभा के प्रधान श्री महाशय धर्मपाल जी का मार्गदर्शन तथा आर्थिक सहयोग हमारा संबल है। मैं उनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूं। श्री सूर्यदेव जी, श्री विमलकान्त शर्मा, श्री सुरेन्द्र कुमार (हिन्दी) श्री बाबूराम शर्मा ने तत्पर सहयोग प्रदान किया। मैं उनका आभारी हूं। विज्ञापनदाताओं तथा प्रेस का आभार व्यक्त करना, मैं अपना कर्त्तव्य मानता हूं।

आशा है कि पाठकों को यह अंक पसन्द आएगा। मेरा विनम्र आग्रह है कि वे अपनी प्रतिक्रियाएं अवश्य भेजें। ये हमें सुधार करने में सहायता प्रदान करेंगी।

महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती के प्रति मेरी विनम्र श्रद्धांजलि।

(पृष्ठ ८ का शेष)

हो गए जैसे—सृष्टि प्रवाह से अनादि है। क्या वेदों के पढ़ने का अधिकार सबको नहीं ? । भोगवाद। अविद्या का प्रथम अंग। आत्म शिक्षा। गंगा की चींद। कर्म व्यवस्था। महा अन्धेर रात्रि। क्या हम जीवित हैं। ईसाई मत समीक्षा, ईश्वर विचार, श्राद्ध व्यवस्था, गुरुकुल, वेद किस पर प्रकट हुए, ईश्वर प्राप्ति, अन्य विषय दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह के नाम से प्रकाशित हुए हैं। उनका अटूट नियम था कि नित्य एक ट्रैक्ट जरूर ही लिखना है।

स्वामी जी ने सिकन्दराबाद, बदायूं, विरालसी महाविद्यालय आदि गुरुकुलों की स्थापना की। वे गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के प्रबल प्रचारक और समर्थक थे। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का विशेष महत्व व स्थान है। इस संस्था ने देश को अनेक विद्वान्, पत्रकार, लेखक, उपदेशक, अध्यापक नेता आदि दिए हैं। जिनका राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान और नाम है। स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज गुरुकुल शिक्षा पद्धति को ऋषि निर्देशित ढंग से चलाना चाहते थे, तभी उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी के साथ महाविद्यालय ज्वालापुर की स्थापना की। वे चाहते थे विद्यार्थियों को नि:शुल्क भोजन और शिक्षा प्राप्त हो। इस उद्देश्य में सफल भी हुए। अपने घर की प्राप्त धन राशि सभी गुरुकुल में लगादी। वे प्रबल ईश्वर विश्वासी थे। वे वीतराग संन्यासी थे। उनकी ईश्वर विश्वास की अनेक घटनाएं प्रसिद्ध हैं। मृत्यु से पूर्व उन्होंने घोषणा कराई थी, कि किसी को वैदिक धर्म पर शास्त्रार्थ करना हो तो कर सकता है, फिर मत कहना, हमें यह शंका रह गई है ?

स्वामी जी मृत्यु की ओर बढ़ रहे थे। उन्हें कोई चिन्ता थी तो केवल ऋषि के मिशन को आगे बढ़ाने की थी। ऐसे उद्भट विद्वान् लेखक, व्यक्तित्व के धनी, शास्त्रीय विषयों को अकाट्य युक्तियों से प्रतिपादन करने वाले अपना सर्वस्व वैदिक धर्म संस्कृति और गुरुदेव दयानन्द पर न्यौछावर करने वाले, आर्य सिद्धांतों के मर्मज्ञ, आर्य साहित्य का भण्डार भरने वाले, गुरुकुल प्रणाली के पोषक स्वामी दर्शनानन्द को शतशत प्रणाम। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को कोटि कोटि नमन। ●

(पृष्ठ ७ का शेष)

अन्ततोगत्वा उन्होंने कहा कि यह शतपथ ब्राह्मण का प्रमाण है। तदनन्तर पं० कृपाराम ने शतपथ ब्राह्मण उनके सामने रख दिया और ललकारते हुए कहा कि दिखाओ इसमें यह श्लोक कहां है। पण्डित मण्डली तितर बितर हो गई।

पं० कृपाराम जी ने कहा—

"मनुष्य जाति में जो उच्च कोटि के विद्वान् होते हैं, जिनका आचरण भी उच्च होता है, वे देव कहलाते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा भी गया है—'विद्वांसो हि देवा:" अर्थात् विद्वान् ही देवता होते हैं। यदि वे एक दिन पूर्व ही बिना बुलाये आ जाते हैं तो फिर उनका आह्वान क्यों किया जाता है।

इस प्रकार प्रबल युक्तियों द्वारा यह सिद्ध किया गया कि मनुष्य जाति में ही उत्तम विद्वान् तथा श्रेष्ठ आचरण वाले पण्डित ही देव कहलाते हैं। यह आपके कल्पित देवता कदापि देवपद के योग्य नहीं हैं।

अत: इन शब्दों के साथ संक्षेप में तर्क वागीश एवं शास्त्रार्थ महारथी पूज्यपाद स्वामी दर्शनानन्द के प्रति अपनी भाव भीनी श्रद्धांजलि समर्पित करता हूं तथा पूर्ण रूपेण आशा करता हूं कि आर्य समाज वर्तमान युग में भी ऐसे शास्त्रार्थ महारथियों को जन्म देने में पूर्णतया सक्षम होगा। हमारा कर्त्तव्य है कि हम स्वामी जी के चरण चिन्हों पर चलकर आर्य समाज के "ओ३म् ध्वज" को ऊंचा रखें। ●

ओ३म् शान्ति: शान्ति: शान्ति:।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रकाशित
वैदिक साहित्य

१. नैतिक शिक्षा (भाग प्रथम, द्वितीय) प्रत्येक		१.५०
२. नैतिक शिक्षा (भाग तृतीय)		२.००
३. नैतिक शिक्षा (भाग चतुर्थ से नवम) प्रत्येक		३.००
४. नैतिक शिक्षा (भाग दशम, एकादश) प्रत्येक		४.००
५ नैतिक शिक्षा (भाग द्वादश)		५.००
६. धर्मवीर हकीकत राय	(वैद्य गुरुदत्त)	५.००
७. फ्लैश आफ ट्रुथ	(डा० सत्यकाम वर्मा)	२.००
८. सत्यार्थ प्रकाश सन्देश	" "	२.००
९. एनोटामी आफ वेदान्त	(स्वामी विद्यानन्द सरस्वती)	५.००
१०. आर्यों का आदि देश	" "	२.००
११. प्रस्थानत्रयी और अद्वैतवाद	" "	२५.००
१२. दी ओरीजन होम आफ आर्यन्स	" "	२.००
१३. चत्वारो वै वेदाः	" "	५.००
१४. द्वैतसिद्धि	" "	५.००
१५. आर्यसमाज आज के सन्दर्भ में	(डा० धर्मपाल, डा० गोयनका)	२०.००
१६. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	(डा० सच्चिदानन्द शास्त्री)	५.००
१७. हंसता चल, हंसाता चल	(स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती)	६.५०
१८. दयानन्द एण्ड दा वेदाज (ट्रैक्ट)		५० रु० सैकड़ा
१९. पूजा किसकी ? (ट्रैक्ट)		५० रु० सैकड़ा
२०. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम (ट्रैक्ट)		५० रु० सैकड़ा
२१. योगीराज श्रीकृष्ण का सन्देश (ट्रैक्ट)		५० रु० सैकड़ा
२२. आर्योद्देश्यरत्नमाला (सुगम व्याख्या)	(डा० रघुवीर)	५० रु० सैकड़ा

नोट : उपरोक्त सभी पुस्तकों पर १५ प्रतिशत कमीशन दिया जाएगा। पुस्तकों की अग्रिम राशि भेजने वाले से डाक-व्यय पृथक नहीं लिया जाएगा।

पुस्तक प्राप्ति स्थान : **दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा**

१५ हनुमान रोड नई दिल्ली-११०००१

नोट—यहां सम्पादकीय पृष्ठ १ का शेष छपना चाहिये था जो पृष्ठ ७८ पर छपा है। इस भूल के लिए खेद है।

चाट मसाला

चाट, सलाद और फलों को अत्यन्त स्वादिष्ट बनाने के लिये यह बेहतरीन मसाला है।

CHAT MASALA

Excellent for garnishing Chat, Salads and fruit to provide delicious taste and flavour.

अमचूर

अपनी क्वालिटी तथा शुद्धता के कारण यह खाने में विशेष स्वाद और लज़्ज़त पैदा करता है।

AMCHOOR (Mango Powder)

It adds special tangy taste and flavour to your dishes with its quality and purity.

लाखों लोगों की पसंद
एम डी एच दंत मंजन
23 जड़ी बूटियों से निर्मित
आयुर्वेदिक औषधि
आपके परिवार
के लिये पूर्ण दंत सुरक्षा
दांतों का दर्द, मुंह की दुर्गन्ध
मसूड़ों की सूजन, ठंडा गर्म
पानी लगना, मुंह में छाले होना तथा
दांतों की अन्य बीमारियों का घरेलू इलाज
एम डी एच
दंत मंजन
लौंग युक्त
प्रतिदिन प्रयोग करें
अपने निकटतम
दुकानदार से खरीदें

Groversons

Paris Beauty
पैरिस ब्यूटी

ग्रोवर सन्स

SALE

● BRA ● PANTIES ● UNDERWEAR ● BANIAN ●

Sparsh BRA
स्पर्श ब्रा

सरिता ब्रा
Sarita BRA

Shalini BRA
शालिनी ब्रा

Shvaita BRA
श्वेता ब्रा

आन्तरिक वस्त्रों में एक मात्र विश्वसनीय नाम...

चमनलाल इन्टरप्राइज़िज़ गली नं.6

Groversons
ग्रोवर सन्स

गली न० - 2, बीडनपुरा,
अजमल खाँ रोड, करोल बाग
नयी दिल्ली - 110005
फोन: 582036,5714200, 5729224

200/- रूपये की खरीद पर 1 सुधांशु जी का टेप रिकार्डर कैसेट या तौलिया मुफ्त

शाखा कार्यालय : ६३, गली राजा केदारनाथ
चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६

With Best Compliments of :

Your Most Trusted Carriers

SOUTH EASTERN CARRIERS LTD.

34, Arakashan Road, Ram Nagar,
Pahar Ganj, New Delhi-110055

Phones : 7534991-92-93-94-95-96.

Main Branches :

Madras, Banglore, Bombay, Hyderabad,

Poona, Ernakulam. Chandigarh, Ludhiana,

Jallandhar, Guwahati, Calcutta, Patna.

Round the Clock Around the Country
Serving Nation's Commerce & Industry

शुभ कामनाओं सहित

महर्षि दयानन्द सरस्वती बोधोत्सव पर

दूरभाष : २२१३५८२

वैदिक धर्मार्थ चिकित्सालय

३/१३, मार्किट खिचड़ीपुर, दिल्ली-९१

जन सेवक को-आपरेटिव अरबन थ्रीफ्ट एण्ड क्रेडिट सोसाइटी द्वारा संचालित

३/५५, मार्किट खि० लि० पं० (६५३ यू०)

यदि आप बीमार हैं और इलाज करा कर परेशान हैं। रोग जैसे पुराना बुखार, काली खांसी, क्षय रोग, बच्चों का सूखा रोग (गारन्टी से ठीक) चर्म रोग जैसे रोगों से पीड़ित हैं तो कृपया पधारें। आप अपने ही चिकित्सालय में, जहां मार्च १९९१ से अब तक १७,००० से भी अधिक रोगी लाभ प्राप्त कर चुके हैं। बिना आप्रेशन पथरी रोग का निःशुल्क इलाज किया जाता है। सभी नए सदस्यों को १२ प्रतिशत की दर से ब्याज दिया जाएगा। शाहदरा क्षेत्र के सभी महानुभावों को अनिवार्य छूट।

समय : प्रातः ९-०० से दोपहर १-०० बजे तक
सायं ४-०० से ६-०० तक
सोमवार को अवकाश

दामोदर प्रसाद आर्य
५/६ खिचड़ीपुर, दिल्ली-९१
व्यवस्थापक एवं संस्थापक

॥ ओ३म् ॥

जन सेवक कोआपरेटिव अरबन थ्रीफ्ट एण्ड क्रेडिट सोसाइटी लि०

३/५५, मार्किट न्यू खिचड़ीपुर दिल्ली-११००९१

फोन : २२१३५८२

महर्षि दयानन्द सरस्वती बोधोत्सव पर

शुभ कामनाओं सहित

शिखा हैन्डलूम कोआपरेटिव इन्डस्ट्रीयल (प्रोड०) सो० लि०

चादर पक्के रंगों में एक बार खरीद कर देखें। (सिंगल बैड) (डबल बैड) प्रत्येक चादर के जोड़े पर महर्षि दयानन्द सरस्वती का चित्र होगा। मिलने का समय प्रतिदिन प्रातः १० से सायं ४ बजे तक। रविवार अवकाश

सुरेन्द्र कुमार, जनरल मैनेजर

पंजीकृत कार्यालय : शैड नं० ५, (सुन्दर नगरी) नन्द नगरी, दिल्ली-९३

फोन : २२९५५२६

॥ ओ३म् ॥

शुभ कामनाओं सहित

महर्षि दयानन्द सरस्वती के ऋषि बोधोत्सव पर

सत्यपाल भाटिया — प्रधान

ब्रह्मदेव गुप्त — मन्त्री

आर्य समाज गांधी नगर

दिल्ली-११००३१

YOGI

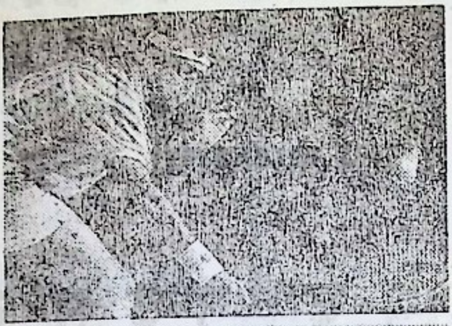

शरीर की तन्दुरुस्ती

दिमाग की चुस्ती

योगी रसायन

'योगी रसायन' शुद्ध बादाम तेल और 24 मूल्यवान तत्वों स बनाया गया है जो मानसिक शक्ति और शारिरिक स्वास्थ्य फिर से तरोताज़ा बनाते हैं. यह परिवार का आदर्श टॉनिक है तथा तनाव व दबाव में काम करने वाले व्यक्तियों के लिए लाभ प्रद है. योगी रसायन निम्न के लिए लाभकारी है

- उच्च रक्तचाप • हृदय सम्बंधी तकलीफें
- स्नायु दुर्बलता • फेफड़ों के दोष
- विभिन्न कमियों से होने वाली बीमारियां
- अनिद्रा. यह उत्कृष्ट आयुर्वेदिक उत्पादन आपके लिए पेश करते हैं योगी फार्मेसी.

AYURVEDIC MEDICINES SINCE 1888

आयुर्वेदिक टॉनिक

डीलर संबन्धी जानकारी के लिए दिल्ली कार्यालय से सम्पर्क करें :

योगी फार्मेसी प्रा. लि.

पंजीकृत कार्यालय : लक्सर रोड, पी.ओ. गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार-249404. दूरभाष : 6208.
दिल्ली : सी-155, नारायणा इण्डस्ट्रियल एरिया फेज़-1, नई दिल्ली-110028. दूरभाष : 5418788.

INTERFACE YP/15HIN/91

ने हुए उत्कृष्ट मसालों
से निर्मित
एम डी एच
गरम मसाला
NET. WT. 100 g./3.5 OZ
एम डी एच
गरम मसाला
अपने भोजन में शुद्ध व श्रेष्ठ मसालों का असली स्वाद अनुभव कीजिये।
एम.डी.एच. गरम मसाला से खाना बनाइये और फिर देखिये अपने मेहमानों को और घर वालों को.... श्रेष्ठ मसालों से बने खाने का स्वाद ही कुछ और होता है।
महाशियां दी हट्टी प्राइवेट लिमिटिड
के अन्य उत्कृष्ट उत्पादन :
एम.डी.एच. किचन किंग, चाट मसाला, देगी मिर्च, चना मसाला आदि

आर्य सन्देश–दिल्ली आर्य.प्रतिनिधि सभा, 15 हनुमान रोड, नई दिल्ली–110001
R.N. No. 32387/77
Post in N.D.P.S.O. on 30, 31-1-92
Licenced to Post without prepayment
दिल्ली पोस्टल रजि. नं.
डी. (सी.) 759
1 मार्च 1992 [redacted]
Licence No. U-139
पूर्व भुगतान बिना भेजने का लाइसेंस नं. यू. 139

असली एवम् असरदार

एम डी एच

दंत मंजन

लौंग युक्त

23 आयुर्वैदिक जड़ी बूटियों से निर्मित, आपके घर का डाक्टर!

आपके परिवार के लिये पूर्ण दंत सुरक्षा

दांतो का दर्द, मूंह की दुर्गन्ध, मसूड़ों की सूजन, ठंडा गर्म पानी लगना, मुंह में छाले होना तथा दांतो की अन्य बीमारियों का घरेलू इलाज

एम डी एच 70 वर्षों से विश्वसनीय नाम

महाशियां दी हट्टी प्रा० लि०

9/44, इण्डस्ट्रियल एरिया, कीर्ति नगर, नई दिल्ली- 110015

फोन : 537987, 537341, 539609

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, 15 हनुमान रोड, नई दिल्ली–1 फोन : 310150 के लिए श्री सूर्यदेव द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा सार्वदेशिक प्रेस, पटौदी हाउस, दिल्ली में मुद्रित। रजि० नं० डी० (सी०) 759